प्रकाशक —
लोक संस्कृति शोध संस्थान
नगर श्री-चूरू
चूरू

मुद्रक —
अतुल प्रिंटिंग प्रेस
चूरू
(राजस्थान)

* अनुक्रम *

खण्ड १: श्रद्धाञ्जलि और संस्मरण

खण्ड—२

कुञ्ज कुसुमाञ्जलि

कुञ्जविहारी शर्मा बी० ए०, साहित्यरत्न

खण्ड—३

जैन धर्म को चूरू जिले की देन

गोविन्द अग्रवाल, चूरू

दो शब्द........

श्री कुञ्जविहारी जी के नाम के साथ 'स्वर्गीय' जोड़ते हुए मन को बड़ी पीड़ा होती है, लेकिन निरुपाय हूं। स्व० विहारी जी के सम्बन्ध में उन के अनेक स्नेहीजनों ने अपने आत्मिक उद्गार प्रस्तुत स्मृति सुमन में प्रकट किये हैं, जिन से उन के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना जा सकेगा। मेरा उन से लगभग ३० वर्षों से घनिष्ठ संपर्क था और इस अवधि के घरेलू और व्यक्तिगत संस्मरणों की सूची बहुत बड़ी है। लेकिन यहां केवल अपने और नगर-श्री के साथ उन के संपर्क के सम्बन्ध में दो ही शब्द कहना चाहूंगा।

विहारी जी उम्र में मेरे से २-३ वर्ष बड़े थे। मैं अपनी रुचि के अनुसार अनेक साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों मे रत रहता आया हूं, लेकिन प्राय: प्रत्येक कार्य में मैं उन की सलाह और सहयोग प्राप्त करता था। अपनी सीमित साधन परिधि में भी जब लगन और श्रम से मैं कोई कार्यक्रम संजोता, तो वे मुझे सदैव ही उद्बोधक शब्दों से प्रोत्साहित करते। मैंने उन के साथ अनेक कवि सम्मेलन, साहित्य गोष्ठियां, उत्सव-महोत्सव आदि किये हैं, और उन में हमारा हार्दिक सहयोग रहा है। लेकिन उन सब में "नगर-श्री चूरू" की स्थापना, उस के उद्देश्य तथा आयोजन उन्हें सर्वाधिक उपयोगी और आवश्यक प्रतीत हुए। इस लिए विहारीजी संस्था की गति विधियों में सदैव रुचि पूर्वक सहयोग देते रहे।

नगर-श्री के समारोहों के संयोजन का काम यद्यपि मेरा था, लेकिन इन का सञ्चालन प्राय: विहारी जी के सरस और साहित्यिक मुहावरेदार वाक्यों से ही शुरू होता था। मेरी दृष्टि में इस कार्य के लिए उन से अधिक उपयुक्त व्यक्ति नहीं था। मैं जब भी उन के घर पर जा कर उन्हें नगर-श्री में होने वाले किसी विशिष्ट कार्यक्रम की सूचना देता तो वे आनन्द विभोर हो कर स्नेह स्निग्ध शब्दों में कहते, "ठीक है आऊगा अवश्य, समारोह का लाभ और आनन्द मैं भी लूंगा,लेकिन संचालन वगैरह का कार्य तुम्हें ही सभालना होगा।" ऐसा प्राय: वे सदैव ही कहते थे, लेकिन नगर-श्री के समारोहों का संचालन वे ही करते थे। संचालक के रूप में ही वे अधिवेशन के प्रयोजन, उद्देश्य और उस की आवश्यकता को इस ढंग से प्रस्तुत कर देते थे कि मुझे कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। एक रूपक सा बंध जाता था, श्रोता और वक्ता सभी गद्गद हो जाते थे। मैं तो उन की पीठ के पीछे बैठा आयोजन का आनन्द लेता रहता था।

मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि विहारीजी अचानक इस प्रकार चले जाएंगे और उस के बाद उन की शोक सभा से ही मुझे संयोजन कार्य शुरू करना होगा। दिनांक २२ सितम्बर, १९६८ की दो पहर को जब जिलाधीश

महोदय श्रीराम प्रियदर्शी की अध्यक्षता में नगर-श्री के सभा-भवन में जब शोक सभा हुई तो उपस्थिति के गीले नेत्रों ने मेरी शोक विह्वल लड़खड़ाती जुबान को भी मानो जकड़ दिया।

स्व० विहारी जी की स्मृति को स्थाई बनाने हेतु नगर-श्री ने "कुञ्जविहारी ग्रंथ माला" प्रारंभ की, जिस के अन्तर्गत "बातां ही चालै" नाम से उन का राजस्थानी कथा संकलन प्रकाशित किया गया जो बड़ा लोक प्रिय हुआ। इसी ग्रंथ माला का दूसरा पुष्प "कुञ्जविहारी स्मृति सुमन" है। पहले स्मृति सुमन में स्वर्गीय आत्मा के प्रति व्यक्त किये गये उन के स्नेही जनों के हार्दिक उद्गारों और श्रद्धाञ्जलियों आदि के संकलन का ही विचार लिया गया था और तदनुसार ही मुद्रण व्यवस्था की गई थी। मुद्रण सहयोगी थे श्री सांवलराम जी शर्मा, श्री महिला अणुव्रत समिति, श्री सोहनलाल जी हीरावत और श्री रावतमल जी वैद।

लेकिन बाद में स्मृति सुमन को अधिक उपयोगी और स्थाई बनाने के विचार से इस में पर्याप्त परिवर्द्धन किया गया। श्री कुञ्जविहारी जी ने समय समय पर राष्ट्र प्रेम में सनी हुई अनेक उद्बोधक कविताएं लिखी थीं, उन में से जो हस्तगत हो सकीं उन का समावेश इस स्मृति सुमन में किया गया, राष्ट्र प्रेम और भारतीय संस्कृति के प्रति उन का स्नेह इन कविताओं के प्रत्येक शब्द से फूटा पड़ता है। ये कविताएं इतनी प्रेरक हैं कि राष्ट्रीय पर्वों पर इन्हें आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित किया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में जैन धर्म के प्रति विहारी जी का आकर्षण बहुत बढ़ गया था। जैन धर्म को चूरू जिले की बहुत बड़ी देन रही है, लेकिन इस पर अब तक कोई प्रकाश नहीं डाला गया था। इस लिए स्मृति सुमन में अत्यंत श्रम से तैयार किया गया एक विशेष लेख "जैन धर्म को चूरू जिले की देन" जोड़ा गया है। अनेक चित्र भी और तैयार करवा कर लगाये गये हैं। इस सारी सामग्री से स्मृति सुमन की उपादेयता में निश्चय ही बहुत अधिक वृद्धि हो गई है। लेकिन साथ ही सुमन का कलेवर भी दुगना हो गया। इस के अतिरिक्त मुद्रण व्यय आदि की सारी व्यवस्था श्री विहारी जी के प्रिय शिष्य श्री फतेहचन्द जी भीमसरिया ने की है।

स्मृति सुमन के लिए संदेश संस्मरण आदि प्रेषित करने वाले सज्जनों व अन्य सहयोगियों को भी धन्यवाद देना आवश्यक समझता हूं। श्रद्धेय मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम', और पूज्यपाद श्री विद्याधरजी शास्त्री ने सदैव की भांति मार्ग दर्शन दिया है। सम्मान्य श्री विश्वेश्वरदयाल जी गुप्ता ने रियायती दर पर स्मृति सुमन का मुद्रण विशेष रुचि पूर्वक किया है, जिस के लिए हार्दिक आभार प्रकट करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूं।

सुबोधकुमार अग्रवाल

मन्त्री

प्रतिभावान् साहित्यकार

यह जान कर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ कि चूरू के प्रतिभावान् साहित्यकार और आदर्श अध्यापक श्री कुञ्जविहारीजी शर्मा, बी० ए० साहित्यरत्न का दिनांक २० सितम्बर, ६८ को आकस्मिक देहांत हो गया।

श्री कुञ्जविहारीजी के सम्पर्क में मैं भी आया हूं। वे एक योग्य एवं अनुभवी अध्यापक थे। बच्चों के साथ उनका प्रगाढ प्रेम था। उनके साथ वे घुल मिल कर खेल खेला करते थे तथा प्रेम व सहानुभूति से पढ़ाते थे तथा वे बालकों के बड़े प्रिय थे।

श्री कुञ्जविहारीजी के आकस्मिक निधन से चूरू-नगर की बड़ी क्षति हुई है। वे न केवल आदर्श अध्यापक ही थे बल्कि सामाजिक कार्यकर्ता भी।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें!

जगन्नाथसिंह मेहता

शासन सचिव
शिक्षा, स्वास्थ्य एवं श्रम
राजस्थान सरकार
जयपुर, दिनांक १२-१०-६८

सजग साहित्यकार

श्री कुञ्जविहारीजी शर्मा राजस्थान के सजग साहित्यकारों में से थे। उनकी साहित्यिक सेवायें सम्पूर्ण हिन्दी संसार के लिए बहुमूल्य रहेंगी। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व सृजन और अनुभव दोनों ही दृष्टियों से ऐतिहासिक है। राजस्थान और विशेषकर चूरू के नागरिकों को इस महान् साहित्यकार के असामयिक निधन से भारी क्षति हुई है। मैं स्वयं उनके निकट संपर्क में रहा हूं।

यह जानकर मन को संतोष और धैर्य मिला है कि चूरू के साहित्य प्रेमी नागरिक साहित्य मनीषी स्वर्गीय श्री कुञ्जविहारीजी शर्मा की स्मृति में "स्मृति सुमन" नामक ग्रंथ का प्रकाशन करवा रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि आपके कुशल संपादन में श्री कुञ्जविहारी स्मृति-सुमन सफलतापूर्वक प्रकाशित हो कर स्थायी स्मारक बन सकेगा।

शासन उपसचिव
शिक्षा (प्रकोष्ठ-४) विभाग
जयपुर १८ जुलाई १९६६

शुभेच्छु
मेघराज मुकुल

सर्वोदय आश्रम चूरू में श्री जैनेन्द्र कुमार और श्री विहारीजी

सेवा भावना के प्रतीक

श्री कुंजविहारी शर्मा के अवसान से चूरू ने अपने एक अनन्य सेवक को खोया है। उनके स्थान की पूर्ति संभव नहीं दीखती। "नगर-श्री" ने उनकी स्मृति को चिर जीवी बनाने का सकल्प उठा कर योग्य कार्य ही किया है। आज हम लोगों का जीवन बाहर ही लालसाओं से घिर गया है। ऐसी स्थिति में बहुत आवश्यक है कि हम सेवा भावना के मूल्य के प्रतीक-पुरुषों के जीवन को उजागर करें और उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाएं। स्वर्गीय शर्मा जी ऐसे ही निस्स्वार्थ पुरुषों में से थे। मुझे भी उनका दर्शन लाभ हुआ था। कृपया जो भी श्रद्धा भेंट आप उनकी स्मृति में अर्पित करने की सोचते हों, उसमें मेरी भी कृतज्ञ श्रद्धांजलि सम्मिलित कर लीजियेगा।

पूर्वोदय प्रकाशन
८, नेताजी सुभाष मार्ग
देहली।
दि० ५-१०-६८

जैनेन्द्र कुमार
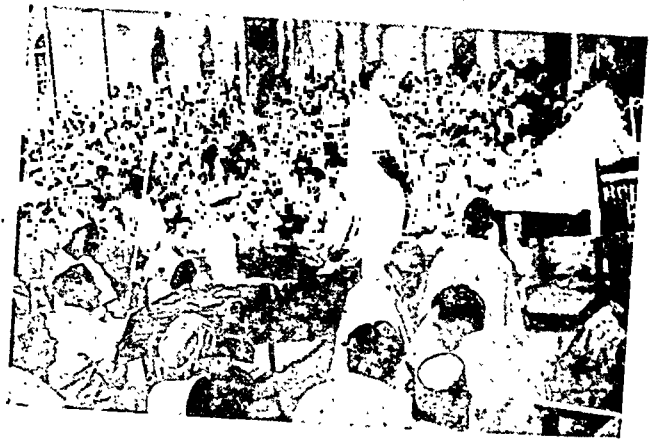
मुनि श्री महेन्द्र कुमार प्रथम के अवधान आयोजन में जैन सेवा संघ, चूरू के मंत्री श्री कोठारी जी से विचार विमर्श करते हुए विहारी जी

सरस्वती के सपूत

कुंजविहारी जी सचमुच ही जन-जन के हृदय कुंज में विहार करने वाले थे। वे सरस्वती के सपूत, सौहार्द के सहोदर तथा शान्ति के सहज स्वरूप थे। उनका मिलन मधुर था। जितनी बार भी वे मेरे से मिले, मैं उनकी मधुरता में ओत-प्रोत हो गया। अणुव्रत परिवार के वे एक अजोड़ सदस्य थे। उनके निधन से साहित्य, शिक्षा आदि अनेक क्षेत्रों में दुर्भर रिक्तता आई है।

कार्तिक पूर्णिमा, सं० २०२५
सागर भवन, शाही बाग
अहमदाबाद—४

—मुनि श्री नगराज

मुनि श्री महेन्द्र कुमार प्रथम द्वारा आयोजित अवधान कार्य-क्रम को सर्वांगीण सफल बनाने मे व्यस्त विहारी जी

रसिक सभा रो रूप

सरल पणो सज्जन पणो, सुघड़ पणो सद्ध्यान ॥
विनय विवेक विशालता, वत्सलता बहु मान ॥ १ ॥
हँस हँस मीठो बोलणो, रखणो सब सु प्रेम ॥
मिलणो मिश्री दूध ज्यूं, हियो सुद्ध ज्यूं हेम ॥ २ ॥
निज कर्तव्य निभाण मैं, आंधी गिणी न धूप ॥
आयोजन री आत्मा, रसिक सभा रो रूप ॥ ३ ॥
पडित प्रतिभावान हो, सुन्दर साहित्यकार ॥
अध्यापक हो अग्रणी, वर आचार विचार ॥ ४ ॥
सन्तजना रो हो भगत, साहस रो हो घेर ॥
कुज विहारी ऊठग्यो, गुण रा पुंज बिखेर ॥ ५ ॥
ऊमर भर भूलें नहीं, (जो)रहग्यो एकर साथ ॥
अब थाने भूलावणा, स ध्यां थारै हाथ ॥ ६ ॥

—मुनि श्री सोहनलाल (चूरू)

योग्य अध्यापक और आदर्श मानव

जब मैंने श्री कुंजविहारीजी के निधन का समाचार पढ़ा तो दिल को धक्का लगा और आंखो के सामने अंधेरा छा गया। मुझे विश्वास भी नहीं हो सकता था कि ऐसे नियमित जीवन व्यतीत करने वाले का निधन इतना शीघ्र हो जावेगा जबकि आयु में वे मुझ से आठ वर्ष छोटे थे।

यह दुःखद समाचार पढ़ते ही मेरी स्मृति मुझे २२-२३ वर्ष पूर्व ले गई जब मैं उनके सम्पर्क में पहली बार आया। मुझे याद है उस समय वे ऋषिकुल आश्रम में अध्यापक का कार्य करते थे और मुझे अपने लोहिया कालेज में हिन्दी के अध्यापक की बहुत जरूरत थी। पहली ही भेंट में उनकी वाणी तथा स्वभाव से मैं इतना प्रभावित हुआ कि उनको तुरन्त ही लोहिया कालेज में हिन्दी के अध्यापक का कार्य भार संभला दिया। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया, मैं इस निर्णय के लिए अपने आप को धन्यवाद देता रहा। यह सौभाग्य ही था कि लोहिया कालेज के विद्यार्थियों को ऐसे अनुपम व्यक्ति से शिक्षा प्राप्ति का लाभ उठाने का अवसर मिला। बाद में मैंने उनको उच्च कक्षाओं, यहां तक कि कालेज कक्षाओं को हिन्दी पढ़ाने का भार भी सौंप दिया और जैसा काम उन्होंने किया उससे मुझे पूर्ण संतोष हुआ।

श्री कुंजविहारीजी न केवल हिन्दी साहित्य के अद्भुत विद्वान थे बल्कि साथ में एक योग्य अध्यापक और आदर्श मानव भी थे। उनका गूढ़ ज्ञान, मीठी वाणी और सरल स्वभाव सब को मोहित किये बिना नहीं रहता था। उनमें समाज के प्रति सेवा की भावना भी थी। उनके साथी, जिनमें से मैं भी एक हूँ, और उनके विद्यार्थी कभी उनको नहीं भूल सकते। उनका आदर्श हमें सदा प्रेरणा देता रहेगा।

रामस्वरूप गुप्त

रजिस्ट्रार

उदयपुर विश्वविद्यालय,

उदयपुर १९-१०-१९६८

समाजभूषण पं० श्री विद्याधरजी शास्त्री एम. ए. जब
राष्ट्रपतिजी द्वारा विद्यावाचस्पति के सम्मान से
विभूषित होकर अपनी जन्मभूमि चूरू पधारे
तब नगर श्री चूरू

द्वारा
उनका हार्दिक अभिनन्दन किया गया
समारोह की अध्यक्षता श्री शिखरचन्द्रजी सत्र न्यायाधीश
ने की श्री कुञ्जविहारीजी (खड़े हुए) अपने
उद्गार प्रकट कर रहे हैं।

उच्चकोटि के नागरिक

> वे प्रतिभाशाली विद्वान् तथा सुयोग्य अध्यापक होने के साथ ही उच्चकोटि के नागरिक एवं कर्मठ कार्यकर्ता भी थे।

पं० कुञ्ज विहारीजी शर्मा के असामयिक स्वर्गवास का समाचार जान कर हृदय को वड़ा आघात पहुँचा। वे प्रतिभाशाली विद्वान् तथा सुयोग्य अध्यापक होने के साथ ही उच्चकोटि के नागरिक एवं कर्मठ कार्यकर्ता भी थे। उनके निधन से चूरू क्षेत्र को जो क्षति पहुँची है, उसकी पूर्ति होना निकट भविष्य में असभव है। श्री भर्तृहरिजी महाराज ने ऐसे ही किसी आदर्श पुरुष को लक्ष्य कर लिखा था कि—

सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुष-रत्नमलंकरणंभुवि।
तदपि तत्क्षणभंगीकरोति, चेदहहकष्टमपंडितताविधे:॥

परम पिता परमात्मा से मेरी करवद्ध प्रार्थना है कि वे दिवंगत आत्मा को चिर शांति एवं उनके शोक संतप्त परिवार तथा विशाल स्नेही समुदाय को इस महान् दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश
झुंझनूं (राज०)
२६-६-६८

शिखरचंद्र कोचर

श्री विद्याधरजी शास्त्री

चूरू का यह पत्र उसके साहित्यिक कुञ्ज मे खाण्डव दाह का सूचक पत्र है। विहारीजी इस रीति से अकस्मात सब को आशाओं पर तुषारपात कर के महाकाश में विलीन हो जाएँगे यह सभावना भी कभी किसी के मस्तिष्क में नही आई थी। विहारीजी केवल दूसरे विहारी कवि ही नहीं अपितु प्रतिक्षण प्रसन्न चेता और व्यक्ति को अपने सरस, अनुपम वचनामृतों से परितृप्त कर देने वाले साक्षात् वृन्दावन कुञ्जविहारी थे। प्रत्येक व्यक्ति के प्रति उनका जो अगाध स्नेह था उस से वह यही समझता था कि उस के प्रति उनका अनन्य भाव विद्यमान है।

नगरश्री ने "कुञ्जविहारी स्मृति सुमन" के प्रकाशन का जो संकल्प किया है वह साहित्यकार की पुण्य स्मृति में समर्पित सबसे अधिक महत्तीय पुष्पाञ्जलि होगी। मुझे विश्वास है कि चूरू के नागरिक अपने इस कर्तव्य पालन में पूर्णतया परिकर बद्ध हो कर प्रकृति गति द्वारा अपहृत चूरू के इस महान् साहित्य साधक को सदा के लिए अमर कर देंगे।

हिन्दी विश्व भारती
बीकानेर
२६-६-६८

विद्याधर शास्त्री एम. ए.
विद्यावाचस्पति

अवधान आयोजन में विहारीजी प्रश्नकर्ताओं का आवाहन कर रहे हैं।

अन्तर और बाह्य में एक रूप

भगवान् श्री महावीर की एक सूक्ति है: "जहा अन्तो, तहा वाहिं, जहा वाहिं, तहा अन्तो-साधक अन्तर और बाह्य में सम होता है"। अध्यातम का गवेषी अपने मन, वचन और कर्म में कभी द्वैध नहीं होने देता। उसका चिन्तन, वुद्धि और प्रवृत्ति अभेद से संवलित होती है।

> अधिकांशत: श्रीमन्तों को आकर्षित करने वाला श्रमिकों का श्रद्धेय नहीं वनता, पर विहारीजी इसके अपवाद थे

महात्मा और सामान्य आत्मा की विभेदक रेखा। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों की एक रूपता तथा अनेक रूपता ही वनती है। पर आज के युग में उसे ही चतुर कहा जाता है, जो वाणी और कर्म को भिन्न भिन्न दिखा सके तथा चिन्तन से प्रतीप ही प्रवृत्ति कर सके। उन व्यक्तियों की संख्या विरल ही है, जो द्वैध को पाट कर स्वयं को स्थिर चित्त रख सकें। पं० कुंजविहारीजी इस युग के चतुरों से सर्वथा भिन्न थे। उनके निकटतम साथियों तथा अन्य सैकड़ों व्यक्तियों ने भी उन्हें कभी द्विरूप नहीं देखा।

पं० विहारीजी के निकट परिकर में जहां छात्रों, श्रमिकों, अध्यापकों व साहित्यकारों की संख्या हजारों में है, वहां श्रीमन्तों की संख्या भी कम नहीं है। अधिकांशतः श्रीमन्तों को आकर्षित करने वाला श्रमिकों का श्रद्धेय नहीं बनता, पर विहारीजी इसके अपवाद थे। वे सब के थे और सब उनके थे। उन्होंने अपनी परिधि में सबको समाहित किया था। अपनत्व और परत्व की भाषा में वे किसी से लगाव व दुराव नहीं रखते थे।

> उनका चिंतन, भाषा-प्रयोग व व्यवहार
> मित्र-अमित्र की परिधि से मुक्त था

उनका कोई अमित्र नहीं था। वे किसी के मित्र नहीं थे। उनका चिन्तन, भाषा-प्रयोग व व्यवहार मित्र-अमित्र की परिधि से मुक्त था। मित्रता किसी अव्यक्त अमित्रता की प्रतिध्वनि होती है। वे इसे सुनने के आदी नहीं थे। यही कारण था, वे किसी सीमा से घिरे नहीं थे। जीवन-पर्यन्त उन्मुक्त रहे और अपने हर सांस को उन्होंने समर्पण के साथ अनुस्यूत किया।

विहारीजी के शिष्यों की संख्या सैकड़ों-हजारों में है। उनके मित्रों की संख्या भी उससे अधिक ही है। मैंने अपने चूरू चतुर्मास (वि सं. २०२३) में

> वे अपने पास बैठे हुये व्यक्ति को भी सचिन्त नहीं रहने देते थे। दो-चार क्षणों में ही वे वातावरण को स्मित हास्य में परिवर्तित कर देते थे।
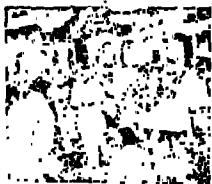
संयोजन की जागरूकता

उन्हें निकट से देखा। ऐसा लगा, चूरू के नागरिकों को उन्होंने अपने स्नेहिल सूत्र में इस तरह आबद्ध कर रखा है कि वह बन्धन सभी के लिये आनंद प्रद हो रहा है। साथ ही यह भी अनुभूति होती थी कि बच्चों, युवकों व वृद्धों पर समान रूप से छा जाने वाला वह एक अनूठा व्यक्तित्व था। बच्चों की अमित श्रद्धा जहां उनकी ओर उमड़ती थी तो युवक भी उनके प्रति सहज समर्पित थे। बुजुर्ग उन्हें अपने परामर्शक के रूपमें मानते थे तो साथी उन्हें अपना मार्ग दर्शक। सभी वर्गों को आकर्षित करने का अनूठा जादू विहारीजी की अपनी निजी सम्पत्ति थी, उन्हें विरासत में प्राप्त नहीं हुई थी।

वे मनसा, वाचा, कर्मणा अणुव्रती थे। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। त्याग-परम्परा को वे जीवन के लिये अनिवार्य मानते थे। साधु-समाज को वे सजग प्रहरी के रूप में मानते हुये सदैव अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त करते थे। वे अपने को लघु मानते थे, पर जनता ने उन्हें कभी लघु नहीं माना।

बहुधा व्यक्ति अपनी असफलता को देखकर निराश हो जाता है। उसे चिन्ताएं घेर लेती हैं। मायूसी उनका दामन नहीं छोड़ती। परिणामतः असफलता का चीर लम्बा होता चला जाता है। व्यक्ति निराशा से ऊपर उठ कर कुछ सोच सके, ऐसा वहां कुछ भी नहीं बच पाता। निराशा, चिन्ता और मायूसी को परछाईयां मनुष्य से कोसों दूर होनी चाहिये थीं, पर इस युग में उन्होंने अपने आंचल में उसे (मानव को) समेट लिया है। मानव भूल जाता है इस सूक्त को 'जिन घड़ियों में हँस सकते हैं, उन घड़ियों में रोये क्यों?" कुछ एक व्यक्ति इसके अपवाद भी होते हैं। असफलता उन्हें दबा नहीं सकती, कभी कभी विस्मृति से वह उनके अनुगत भले ही हो जाये। तब निराशा, चिन्ता और मायूसी भी उनसे रूठी हुई सी रहती है। अपनी मुस्कान से वे उसे छीन लेते हैं। पं० कुञ्जविहारी जी के चेहरे पर स्मित मुस्कान सदैव रही। व्यग्रता ने उनके पास आने का साहस नहीं किया। विहारी जी इससे आगे की कला में भी निष्णात थे। वे अपने पास बैठे हुये व्यक्ति को भी सचिन्त नहीं

रहने देते थे। दो चार क्षणों में ही वे वातावरण को स्मित हास्य में परिवर्तित कर देते थे। प्रत्येक व्यक्ति उस मुस्कान में पग कर अपने दुःख दर्द को भूल जाया करता था। विहारी जी को देख कर मुझे वह पद्य बहुधा याद आता था—

जब तुम आये जगत में जगत हँसा तुम रोये
ऐसा काम कोई कर चलो, तुम हँस मुख जग रोये

मुस्कान अंतिम क्षण तक भी उनके साथ रही। उनके निकटस्थ व्यक्तियों ने बताया, आत्मा के प्रयाण के बाद भी उनकी पार्थिव देह विहँसती ही रही। मुस्कान का उनके साथ तादात्म्य नही होता तो यह प्रसग भी नही बन पाता।

वे मनसा, वाचा, कर्मणा अणुव्रती थे। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। त्याग-परम्परा को वे जीवन के लिये अनिवार्य मानते थे। साधु समाज को वे सजग प्रहरी के रूप में मानते हुए सदैव अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त करते थे।

—मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

मिलाप भवन
जयपुर
२०-११-६८

श्री जी० रामचद्र

एक सरल हृदय अध्यापक के लिए
एक तरल हृदय एवं भावुक
प्रशासक के श्रद्धा सुमन—

अब कहां वो कुंज
अब तो पतझड़ है
और उसकी राख बाकी है
विहारी की वहार तो उजड़ ही चुकी
सूखे हुए पत्तों की बयार बाकी है।
टूटे हुए दिल की पुकार बाकी है।
रो रहे हैं सभी
आज इस गम में
इस तरह से
चल बसा है कोई
जैसे चूरू के हर घर में,
हर गै में,
हर आंगन में
मर गया है कोई
घर २ का चिराग बुझ गया जैसे
जीवन का राग चुप हो गया जैसे
दीपक का तेल चुक गया जैसे

मां की वीणा का तार तो टूट ही गया
टूटे तारों को जुटाने की सजा बाकी है।
होंगे फिर भी मुशायरे
कवि-सम्मेलन
जश्ने आजादी भी होंगे
जुटेंगे लोग
लगेंगे फिर भी मेले
सांस्कृतिक संध्याएं फिर भी मनाई जावेंगी
'राम प्रियदर्शी' की सदारत में,
लेकिन ढूंढेंगे लोग
इधर भी उधर
कोई २ निगाहें भी भटकेंगी
सदर की खुद की आंखें जब तलाशेंगी
'भाभो विहारीजी' कह कर किस को पुकारेंगे
कौन अब देगा दाद हमें
रो पड़ेंगे जिसको भी पुकारेंगे।

× × जाभो विहारी जी
कुंज और बहार तो अब हमारी उजड़ ही चुकी
कांटे रह गये हैं पीछे
फूलों की बयार तो हमारी बिछुड़ ही चुकी
तुम तो चल दिये हंस कर
कह गये कि मां के मन्दिर में
फर्ज के एहसास में
बच्चों में
उनके उस्ताद का दम निकले
हमें पता ही न चला कि चुपके से
इस चमन से
चिलमन से

वहारों से
हमारे कुंजविहारीलाल कब निकले।
तुम तो चले ही गये लेकिन
तुम्हारे गमगीन गम के मातम में
हमें जीने की सजा वाकी है।
विहारी की वहार तो
उजड़ ही चुकी
अब तो पतझड़ है
और उसकी राख वाकी है
टूटे हुए दिल की पुकार वाकी है।

जो० रामचन्द्र, आई.ए.एस., 'राम प्रियदर्शी'
जिलाधीश चूरू, २८/११/६८

२ अक्टूबर १९५० ई० सर्वोदय आश्रम चूरू द्वारा आयोजित गांधी जयन्ती पर श्री एस.डी. पाण्डे प्रधानाचार्य लोहिया महाविद्यालय की अध्यक्षता में श्री कुञ्जविहारीजी महात्माजी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाल रहे हैं।

राष्ट्रीय भावना के प्रेरक

श्री कुञ्जविहारी जी शर्मा के निधन समाचारों से विस्मय एवं दुःख हुआ। मानस इस आकस्मिक घटना को सुन कर क्षुब्ध हो उठा।

मैं जब जिलाधीश चूरू था, तब मुझे उनकी योग्यता, अनुभव आदि से परिचित होने का अवसर मिला। शर्मा जी वस्तुतः संस्कृत के विद्वान् थे। राष्ट्रीय सेवा, जनहित व साहित्य सेवा ही उन के प्रमुख क्षेत्र रहे। इतना ही नहीं शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्र भी उनका व्यापक था, उस मे विशालता थी। उनके राम-चरित मानस के ज्ञान का स्मरण आ जाने पर आज भी हृदय पुलकित हो उठता है। उनकी मधुर वाणी, ओजस्वी भाषा, और उनके सुकोमल हृदय ने मेरे हृदय पटल पर चिर स्थायी छाप छोड दी है। मुझे शर्मा जी के अति निकट सम्पर्क में आने का अवसर विशेष कर शिक्षा सम्बन्धी चर्चा, छात्रों द्वारा खेल-कूद प्रतियोगिता एवं रंगमंच पर अभिनय आदि स्थलों पर मिला।

मैं उनके सुन्दर आचरण, शिक्षा के क्षेत्र में रुचि, साहित्य सेवा, बच्चों मे राष्ट्रीय भाव जाग्रत कराने की प्रेरणा से विशेष प्रभावित रहा हूँ।

मैंने उनके साथ सांस्कृतिक शोध संस्थान नगर श्री चूरू को देखा

सितम्बर सन् १९६५ मे जब पाकिस्तान ने हिन्दुस्तान पर जो प्रथम हमला किया एवं समय की गति का आभास करते हुए शर्मा ने जवानों की सेवा हेतु छात्रों को प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया वह विस्मृत नहीं हो सकता।

मैं उनके परिवार से हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूं एवं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि दिवगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्राप्त हो।

निबन्धक — राजस्व मंडल, राजस्थान गो० भगत

अजमेर १-१०-६८

मैंने एक व्यक्तित्व देखा —

मैंने एक ऐसा व्यक्तित्व देखा—जिसके सम्बन्ध में अब सिर्फ पढ़ा जायेगा, और पाठक उसकी कहानी पढ पढ कर उस व्यक्ति का दर्शन करने को तरसेगा। और जमाना कहेगा— "अफसोस! वैसा व्यक्तित्व बीज आने वाली कई दशाब्दियों तक इस मरु-भूमि में पल्लवित होने की संभावना नहीं है।" मेरा पाठक निराश होकर भटक जायेगा।

जब भी उन्हें देखा— प्रसन्न मुख-मुद्रा, विहँसता हुआ चेहरा-जिसमे सरलता एव निश्छलता की सौरभ सतत फूटती हुई देखकर 'मुख कमल' कहने का जी होता है, कोई कल्पना नहीं कर सकता कि इस खिले हुए 'मुख कमल' के नीचे एक हृदय है, और उसमें न जाने कितने दर्द छिपे हैं, अपने नहीं, धर्म, समाज और देश की जनता के। आने वाली नई पीढी की चिन्ताएं उसे कैसे कचोट रही हैं, भीतर ही भीतर। जब कभी उनकी मधुर व सुभाषित वाणी सुनने का प्रसंग आता तो, ऐसा लगता कि यह व्यक्ति स्वयं बह रहा है, और हमें भी बहाए ले जा रहा है, सेवा और समर्पण के महा प्रवाह में।

उनके चेहरे पर कभी-कभी एक शिकन देखी, कि "हम सिर्फ अपने लिए जी रहे हैं, सिर्फ अपने लिए। अपनी सन्तान के लिए भी नहीं! देश और राष्ट्र की बात बहुत दूर है।" उनकी यह पीड़ा वाणी में भी व्यक्त होती थी, एक पुकार उठती कि "हमें अपनी इस क्षुद्रता को तोडना है, अपने अस्तित्व को विराट् बनाना है, और समर्पित हो जाना है — संस्कृति, साहित्य, धर्म और समाज के अभ्युदय के लिए"।

श्री कुञ्जविहारीजी — जिन्हें हम 'विहारीजी' के संक्षिप्त नाम से जानते थे, भारतीय संस्कृति के एक जीवन्त रूप थे। उनमें एक पिता का सहज वात्सल्य था, और भारतीय गुरु की उदार कर्तव्य निष्ठा भी। संस्कृति और साहित्य का उदात्त चिन्तन उनमें प्रस्फुटित हुआ था, और भारतीय तत्त्व चिन्तन की दिव्य जीवन दृष्टि भी उन्हें प्राप्त हुई।

वे पिता, गुरु, साहित्यकार, तत्त्व-चिंतक, देशभक्त और कर्तव्यनिष्ठ एक नागरिक थे।

विहारीजी की स्मृतियां आज मन को उद्वेलित कर रही हैं, नियति की क्रूर गति पर झल्लाहट आ रही है कि वह ऐसे व्यक्तित्व को उठाकर क्यों ले जाती है जिसकी पूर्ति आने वाला भविष्य नहीं कर सकता। — — —

सम्पादक : श्री अमर भारती
सन्मति ज्ञान पीठ, लोहामण्डी, आगरा-२

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

बात का धनी

सन् १९५० में जब मैं बागला विद्यालय में प्रधानाध्यापक बन कर आया तब ही से मेरा विहारीजी से परिचय हुआ।

मैं कार्यालय में बैठा था कि एक सज्जन सफेद धोती-कुर्ता पहिने, सिर पर काली टोपी ओढ़े, धरती न कुछ जाए ऐसी चाल से, कुछ सकुचाते धीरे-धीरे मुस्कराते, कार्यालय में आये। यही मेरा उनका प्रथम परिचय था। इसी परिचय में हमने एक दूसरे को समझा व उसी दिन से मैं उनका भक्त बन गया। हमारे बीच में से आयु, पद आदि की दीवार उसी दिन से हट गई, आपस में किसी प्रकार का भेद भाव न रहा।

हम दोनों का एक दूसरे के स्वागत सत्कार का ढंग भी अलग था। विहारीजी दरवाजे पर से ही आवाज लगाते 'अलख निरंजन', उत्तर मिलता-सुबह ही सुबह कहां का मँगता आ गया, भीड़ छांट, अगला दरवाजा देख! लेकिन उनके अन्दर आते ही मैं भोला बन कहता, अरे यह तो विहारीजी हैं, मैं तो समझा था कोई......।

विहारीजी कहां चूकते, बच्चों में से जो दिखाई देता उसे ही आवाज लगाते—ओ भोला! जरा शीशा तो ले आ, तेरे पिताजी को जरा दानी महापुरुष का चेहरा शीशे में दिखला दूं। उत्तर में मैं भी आवाज लगाता, बाई शीला, तू शीशा ले ही आ, विहारी का मुगालता मुझे आज दूर करना है। अपने को कामदेव का अवतार ही मानता है, शीशा देखने से ही पता चलेगा कि पण्डितानी गरीब व भली औरत है, और कोई होती तो शक्ल देखते ही भाग गई होती।

इसी तरह का प्रेमालाप आम तौर पर मिलने पर होता, फिर कहीं एक दूसरे के दुःख सुख की बातें होतीं। विहारीजी के आते ही चिन्ता, दुःख, क्रोध आदि सब ही भाग जाते थे। वह स्वयं भी अनेक परेशानियों से घिरा था, परन्तु क्या मजाल कि उनकी छाया भी मुँह पर आ जाए। यह दुर्लभ गुण तो विरले ही मनुष्यों में मिलता है।

राजकीय नौकरी से अवकाश पाने के बाद अगस्त ६७ में मैं चूरू आया था। ओमप्रकाश बजाज के यहां ठहरा था। किसी विचार में बैठा था कि धीमी सी चिर-परिचित "अलख निरंजन" की आवाज ने चौंका दिया। देखा विहारी ही है, परन्तु पहिले वाले विहारी की छाया मात्र ही है। चेहरा काला पड़ गया है, रौनक गायब है, परन्तु वह शर्मीली, आकर्षक मुस्कान अब भी चेहरे पर खेल रही है।

दशा कुछ अच्छी नहीं लगी। हमेशा के स्वागत-सत्कार के शब्द मैं तो भूल गया। सिर्फ इतना ही कह सका, 'विहारी, यह क्या दशा बनाली?' शायद मेरे चेहरे पर दुःख की छाया देख कर विहारी ने कहा, "बाबूजी, मैं तो मृत्यु के लिए अभी तैयार हूं, इसमें दुःख क्यों? मनुष्य को मरना तो है ही, परन्तु जीने की लालसा तो हर एक को लगी ही रहती है। मैं तो अब यही चाहता हूँ कि यदि एक वर्ष और जीवित रह जाऊं तो एक आध शेष कर्तव्यों को और पूरा कर दूं।" मैंने कहा पंडित तेरा बिगडा ही क्या है, दो साल के जीवन की गारंटी तो मैं लेता हूँ। परन्तु इलाज मेरे आदेशानुसार कराना पडेगा। विहारी ने उत्तर दिया, ठीक है, मुझे तो एक वर्ष की गारन्टी की जरूरत है।

विहारीजी को औम डा० शंकर लाल जी के पास ले गया। दशा में काफी सुधार हुआ, मुझे तो आशा थी कि मेरी गारन्टी सच्ची होगी। परन्तु वह तो अपनी बात का धनी निकला, एक वर्ष पूरा होते ही मुझे झूठा साबित कर चला गया। सिर्फ चला ही नहीं गया, जाने से पहिले भी "बात का धनी हूँ" यह रौब भी मुझ पर गांठ कर ही गया।

मृत्यु से पांच छः दिन पहिले, "अलख निरंजन" की मधुर आवाज के साथ विहारीजी आये, अच्छे खासे दिखलाई देते थे। बैठते ही बोले, बाबूजी एक वर्ष हो गया, अब मुझे यदि भगवान् बुलावें तो भी कोई गिला नहीं।' मैंने कहा पंडित, क्या बकता है? सांड जैसा तो हो गया. फिर भी मरूं मरूं करता है। क्या आज पण्डितानी ने मरम्मत कर दी है जो ऐसा कहता है या मुझे झूठा साबित करना है? मैंने तो दो वर्ष की गारन्टी ले रखी है, अभी तो एक वर्ष ही हुआ है।

मैं तो स्वप्न में भी नहीं सोचता था कि यही अन्तिम मुलाकात होगी।

विहारी की मृत्यु से प्रत्येक को जो उनसे जरा भी परिचित था, दुःख हुआ। विद्यार्थी एक आदर्श गुरू खोकर दुखी है, अध्यापक एक अच्छा सहयोगी खोकर दुखी है, इसी प्रकार हर व्यक्ति उनके किसी न किसी गुण के कारण दुखी है। दुखी मैं भी हूँ और बहुत, किन्तु किसी गुण के कारण नहीं अपितु उन में न पाये जाने वाले इस दुर्गुण के कारण कि "अब कौन मुझे खरी खोटी, खरी मधुर शब्दों में सुनायेगा।"

—विश्वेश्वरदयाल गुप्ता

अनूप प्रिन्टिंग प्रेस,
चूरू।

उज्जवल आत्मा

प्रिय अमर कुञ्जविहारी,

जीवन और मरण के बाहुपाश में तुम नहीं थे, तुम स्वच्छन्द हो—तुम हमारी दृष्टि से अलग हो गये हो, लेकिन सृष्टि से नहीं। तुम इतनी जल्दी क्यों चले गये, इसका भी रहस्य है। पता नहीं, भगवान् की कितनी दुनिया और हैं, और तुम्हारी आत्मा शायद किसी दूसरी दुनिया की सैर कर रही हो, पर यह निश्चित है कि तुम्हारी जैसी उज्जवल आत्मा सो नहीं सकती। सतत जाग्रत रहने वाली तुम्हारी आत्मा परमात्मा के साथ खेल रही होगी।

एक युग के बाद, जब मैं अपनी मातृभूमि चूरू के दर्शन करने गया तो तुम्हारे माध्यम से मैंने निश्छल प्रेम के साथ पहला साक्षात्कार किया। तुम्हारी आंखों से बोलने वाली हंसी, तुम्हारी आत्मा से, आत्मा की तह से निकलने वाली आवाज, तुम्हारा घर में बुलाकर, "बाजरे की रोटी और फलियों का साग" खिलाने का प्यार—यार कभी भूल सकेंगे? तुम तो मेरे मित्र थे, और मेरा इतना सौभाग्य था कि मैं तुम्हारी सांसारिक मृत्यु से पहले तुमसे मिला-खिला और हिला।

लोगों ने मुझे समाचार भेजे कि तुम्हारा सांसारिक स्वरूप समाप्त हुआ, किन्तु भाई तुम अमर हो; मृत्यु का झटका तुम्हें समाप्त नहीं कर सकता। तुम्हारे कहकहे, तुम्हारी हँसी, तुम्हारी आत्मीयता, तुम्हारी भावुकता चूरू के कण-कण में गूंजती रहेगी।

तुम चूरू के मुकुट हो। चूरू का हर नागरिक यदि तुम्हारे जरो जीवन का अनुसरण करे तो चूरू धरती पर स्वर्ग बन जाये। भगवान् की यह इच्छा है कि तुम्हारे मधुर-मनोहर और मंजुल स्वरूप का सन्देश पश्चिमी हवाओं में गूंजता रहेगा और तुम्हारी बनाई हुई सड़क से चूरू का हर नागरिक सफलता से गुजरता रहेगा।

तुम्हारा जीवन सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् से ओत-प्रोत था। तुम महान् आत्मा की सुगन्धी छोड़ कर गये हो, हम सुवासित हो रहे हैं और होते रहेंगे।

सस्नेह

४-११-६८
भरत भवन
न्यू जूहू रोड,
बम्बई-५६

(२३) श्री कुञ्जविहारी स्मृति सुमन

जीवन में अनेक अपरिचितों से परिचय होता है, कई व्यक्तियों के साथ निकटता का सम्बन्ध भी बनता है, किन्तु पूर्व जन्म के परिचय का आभास विरले ही जनों से मिलता है। सरकारी सेवा में एक स्थान से दूसरे स्थान, एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में विचरण करते हुए विविध व्यक्तित्वों से सम्पर्क हुआ। सान्निध्यकाल में सम्भवतः उनका प्रभाव भी रहा, किन्तु विलगता के साथ ही चित्रपट की छाया की तरह उनकी स्मृति विस्मृति के गर्भ में सो गई।

चूरू जैसी अनजान जगह में अतिचट्टुक-सा, जब स्थानान्तरित होकर आया, तो विद्यालय प्रांगण में खड़े लम्बे कद, सुदृढ देहयष्ठि, आजानुभुज वाले जिस व्यक्ति ने अपनी स्वाभाविक स्मितधारा से मेरी दृष्टि प्रक्षालित की, उसकी वह स्मृति आज भी मानस पटल पर ज्यों की त्यों खचित है।

ज्योति-पुञ्ज

विद्यालय में उनकी नियमितता, अपने कार्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा, कर्मठता एवं संस्था के हित के प्रति जागरूकता ने मुझे मोह लिया। अस्वस्थ होते हुए भी उनको कभी विलम्ब से आते मैंने नहीं देखा! कक्षा में अध्यापन के कालांश में उन्होंने कभी सुस्ती अथवा थकान की प्रतीति नहीं होने दी। दूसरों के कार्यों को ही नहीं, अपितु संस्था के अतिरिक्त कार्यों को उन्होंने पूर्ण जिम्मेदारी से किया। संस्था के विवादास्पद विषयों में जब मुझे मार्ग की आवश्यकता महसूस हुई, उन्होंने मुस्कुराते हुए ऐसी सलाह दी, जिसने केवल मार्ग ही प्रशस्त नहीं किया, बल्कि मुझे कार्य करते रहने की प्रेरणा दी। एक सच्चे शिक्षक, एक आदि गुरु के व्यक्तित्व की स्पष्ट प्रतिमूर्ति, मैंने उन्हें पाया। छात्रों पर जितना प्रभाव उनका मैंने देखा, वह किसी भी विद्यालय में आज तक देखने को नहीं मिला। छात्रों में भी उनके प्रति अपार श्रद्धा थी।

पन्द्रह अगस्त के सांस्कृतिक कार्यक्रम की आर्थिक विपन्नता से जब घिरे हुए, मैंने अपनी समस्या उनके समक्ष प्रस्तुत की, तो हँसते हुए उन्होंने मुझे निर्भय कर दिया और दो चार श्रेष्ठिजनों से ही मेरी इस समस्या का सूत्र खोज निकाला! सांस्कृतिक कार्यक्रम का संयोजन करते हुए, उनकी वाक्पटुता, संयोजन सामर्थ्य एवं रङ्गमञ्च नियन्त्रण की अपूर्व क्षमता, शब्दों में संजोया-चित्रात्मक प्रस्तुतिकरण, मैंने उससे पूर्व कभी नहीं देखा!

किन्तु सतजनों का सम्पर्क अल्प होता है, यह विधना की विडम्बना है। अध्यापकों में बैठकर उनके सारगर्भित चुटकुले, कथात्मक प्रसङ्ग सुनते हुए, अगस्त व्यतीत हो गया। सभी अध्यापकों एवं मुझे उनके स्वास्थ्य के

अनमोल रत्न

श्री कुञ्जविहारीलाल मेरे अत्यन्त निकटस्थ प्रिय जनों में से एक थे। मैं उनकी विद्वता पर मुग्ध था। वे शिक्षा विभाग के एक अनमोल रत्न थे जिन्हें खो कर बड़ी क्षति हुई है। उनका स्थान सदैव रिक्त ही रहेगा।

गत वर्ष से वे लगातार अस्वस्थ रहे किन्तु वे निरन्तर रूप से छात्रों की प्रगति में व्यस्त रहते थे। छात्रों के नैतिक स्तर को उच्च करने में वे बहुत ही चिन्तित रहते थे।

मैं व्यक्तिगत रूप से उन्हें अधिक चाहता था क्यों कि वे एक उत्तम कोटि के अध्यापक थे। हिन्दी अध्यापन में कुशलहस्त होने के कारण सभी छात्र उनसे लाभान्वित होते थे और यह विद्यालय का सौभाग्य था कि ऐसे उत्कृष्ट व्यक्ति बागला विद्यालय में थे।

कृपया मेरी ओर से उनके कुटुम्ब को समवेदना संदेश दें। ईश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले। मेरे समस्त परिवार ने उनके निधन पर समवेदना अभिव्यक्त की है। ईश्वर उन्हें सद्गति दे।

दि० २७-६-६८

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय
नागोर

बालूसिंह सोलंकी

प्रभाव शाली व्यक्तित्व

श्री कुञ्जविहारीजी से मेरा प्रथम परिचय सन् १६४१ ई० में चूरू में ही कुछेक हास्यात्मक कविता पंक्तियों के आदान प्रदान से ही हुआ था। परिचय बढ़ कर मैत्री में परिणित हो गया।

स्मित हास्य युक्त प्रभाव शाली व्यक्तित्व, बच्चों के बीच बच्चे और बड़ों के बीच बड़े, और साहित्य-रसिकों के बीच— मैं क्या कहूं— काव्य-हृदय थे।

उनके अध्यापन को तो छात्र श्रद्धा पूर्वक स्मरण करेंगे। व संयोगवश वे तो अनेक छात्रों को उनका शिष्य कहलाने गौरव दे गये।

इस युग में उन जैसे कर्मठ व्यक्ति की देश और समाज व्यक्त उन्नति के लिये बड़ी आवश्यकता थी।

नागौर

उमानीराम शर्मा "आत्रेय"

(२३) श्री कुञ्जविहारी स्मृति सुमन

जीवन में अनेक अपरिचितों से परिचय होता है, कई व्यक्तियों के साथ निकटता का सम्बन्ध भी बनता है, किन्तु पूर्व जन्म के परिचय का आभास विरले ही जनों से मिलता है। सरकारी सेवा में एक स्थान से दूसरे स्थान, एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में विचरण करते हुए विविध व्यक्तित्वों से सम्पर्क हुआ। सान्निध्यकाल में सम्भवत: उनका प्रभाव भी रहा, किन्तु विलगता के साथ ही चित्रपट की छाया की तरह उनकी स्मृति विस्मृति के गर्भ में सो गई।

चूरू जैसी अनजान जगह में अनिच्छुक-सा, जब स्थानान्तरित होकर आया, तो विद्यालय प्रांगण में खड़े लम्बे कद, सुदृढ़ देहयष्टि, आजानुभुज वाले जिस व्यक्ति ने अपनी स्वाभाविक स्मितधारा से मेरी दृष्टि प्रक्षालित की, उसकी वह स्मृति आज भी मानस पटल पर ज्यों की त्यों खचित है।

ज्योति-पुञ्ज

विद्यालय में उनकी नियमितता, अपने कार्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा, कर्मठता एवं संस्था के हित के प्रति जागरूकता ने मुझे मोह लिया। अस्वस्थ होते हुए भी उनको कभी विलम्ब से आते मैंने नहीं देखा! कक्षा में अध्यापन के कालांश में उन्होंने कभी सुस्ती अथवा थकान की प्रतीति नहीं होने दी। दूसरों के कार्यों को ही नहीं, अपितु संस्था के अतिरिक्त कार्यों को उन्होंने पूर्ण जिम्मेदारी से किया। संस्था के विवादास्पद विषयों में जब मुझे मार्ग की आवश्यकता महसूस हुई, उन्होंने मुस्कुराते हुए ऐसी सलाह दी, जिसने केवल मार्ग ही प्रशस्त नहीं किया, बल्कि मुझे कार्य करते रहने की प्रेरणा दी। एक सच्चे शिक्षक, एक आदि गुरु के व्यक्तित्व की स्पष्ट प्रतिमूर्ति, मैंने उन्हें पाया। छात्रों पर जितना प्रभाव उनका मैंने देखा, वह किसी भी विद्यालय में आज तक देखने को नहीं मिला। छात्रों में भी उनके प्रति अपार श्रद्धा थी...

पन्द्रह अगस्त के सांस्कृतिक कार्यक्रम की आर्थिक विपन्नता से जब घिरे हुए, मैंने अपनी समस्या उनके समक्ष प्रस्तुत की, तो हँसते हुए उन्होंने मुझे निर्भय कर दिया और दो चार श्रेष्ठिजनों से ही मेरी इस समस्या का सूत्र खोज निकाला! सांस्कृतिक कार्यक्रम का संयोजन करते हुए, उनकी वाक्पटुता, संयोजन सामर्थ्य एवं रङ्गमञ्च नियन्त्रण की अपूर्व क्षमता, शब्दों में संजोया-चित्रात्मक प्रस्तुतिकरण, मैंने उनसे पूर्व कभी नहीं देखा!

किन्तु सज्जनों का सम्पर्क अल्प होता है, यह विधना की विडम्बना है। अध्यापकों में बैठकर उनके सारगर्भित चुटकुले, कथात्मक प्रसङ्ग सुनते हुए, अगस्त व्यतीत हो गया। सभी अध्यापकों एवं मुझे उनके स्वास्थ्य के

प्रति चिन्ता थी, उनसे अनेक बार कहा– "आप विश्राम किया करें।" किन्तु उनका उत्तर था– "साहब मेरी आकांक्षा है, कक्षा में पढ़ाते हुये चला जाऊं!" मधुमेह ने उन्हें जर्जर कर दिया था। सितम्बर अठारह को कक्षा दसवीं 'द' में पढाते हुए, उन्हें कुछ घबराहट महसूस हुई वे कक्षा से कार्यालय तक आये और मूर्छन्न हो गये। डा० रमेश सिंघवी आये, उपचार हुआ और सभी अध्यापक एवं छात्र उन्हें घेर कर खड़े हो गये, मन में अपार आकुलता लिये, नयनों में विषाद लिये। उस दिन उन्होंने चेतन लाभ किया। हमारे मुख की उदासी देखकर उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा– "साहब, देखिए, मेरा यह खेल कैसा रहा, आप सब परेशान हो गये!" हम लोगों के मुखों पर भी मुस्काहट आ गई! १९ सितम्बर को वे अपने घर पर रहे, उनसे मिले तो अगले दिन तक स्कूल आ जाने की बात उन्होंने कही।

किन्तु विधना कुछ और चाहती थी। २० सितम्बर को प्रातः शाला मे शोक समाचार पहुंच गया! विद्यालय के बालक, अध्यापक, चपरासी सब रो पड़े। मैं अपने आप को सम्भाल नहीं पा रहा था, लग रहा था जैसे अंतराल का कोई अनमोल रत्न खो गया है। कोई ज्योति-पुञ्ज बुझ गया है। क्या करूं? मेरा दायित्व क्या है? यह समझ भी जैसे तिरोहित हो गई।

विद्यार्थी बिना कहे उनके घर की तरफ दौड़ पड़े शिक्षकगण भी

अन्तिम दर्शन

पार्थिव देह के पास श्री गिरजाशंकर, [illegible] कुमार, पीछे दोनों पुत्र [illegible] और [illegible]

महा यात्रा

शहर के गणमान्य नागरिक, छात्र, शिक्षक और प्रियजन श्री कुञ्जविहारीजी की महा यात्रा में

आर्द्र नयन लिये, अनुशासन की वेड़ियां तोड़ उनके अंतिम दर्शन की साध लिए चल पड़े, तब मैं उद्वेलित होकर अपने कार्यालय में घुस गया और बच्चों की तरह रो पड़ा, किन्तु कुछ ही क्षणों पश्चात् शाला के वरिष्ठाध्यापक श्री रामकुमारजी व शिवभगवानजी आ गये!

विहारीजी उसी मधुर मुस्कान एवम् स्निग्ध भाव से अन्तिम शय्या पर सोये थे, चूरू के जनसाधारण, श्रेष्ठिजनों, बालक-बालिकाओं का तांता लगा था, एक ओर बैठा मैं सम्मान की अमूल्य निधि समेट रहा था, जो विहारीजी के चर्तुदिक विकिरण थी। मैंने अपने जीवन में किसी राजा अथवा अपार सम्पत्तिशाली सेठ को भी इतना सम्मान पाते नहीं देखा था। यह निर्लेप, निस्पृह, साधारण पारिवारिक स्थिति का व्यक्ति कितना ऊंचा है! कितना महान है! जो मेरे सान्निध्य में रहा है। मेरा वक्ष गर्व से आप्लावित हो गया।

आज विहारीजी हमारे बीच नहीं है किन्तु उनकी स्मृति एक ज्योति शलाका सी विद्यालय के प्राङ्गण में जल रही है, ज्ञान कक्ष - और विहारी कुञ्ज का निर्माण हो रहा है, जो युगों युगों तक समाज का मार्ग प्रशस्त करेगा।

दि० १८/७/६६ — रामानन्द गुप्ता :

रा० बागला उ०मा० विद्यालय, चूरू। — प्रधानाध्यापक

श्री कुन्जविहारी शर्मा स्मृति ज्ञान-कक्ष के शिलान्यास पर

दाईं ओर से— प्रधानाध्यापक श्री रामानन्दजी गुप्ता, श्री सोहनलालजी हीरावत और पं. विद्याधरजी शास्त्री

उनकी देन अद्भुत थी

कितने सरल, मधुर और स्वस्थ सहजता के धनी थे पं० श्री कुञ्जविहारीजी शर्मा। नगर में होने वाले आयोजनों में विहारीजी ने जो देन दी, वह सचमुच अद्भुत थी। महिला अणुव्रत समिति चूरू की बहिनें उनके सतत और सद् प्रयत्नों के फल स्वरूप ही अपनी सुप्त और मूक भावनाओं को वाणी दे कर उन्हें श्रद्धेय साधु समाज के सान्निध्य में होने वाले आयोजनों में काव्य और साहित्य के रूप में प्रस्तुत कर पाने में सक्षम बन सकीं।

वे जब से भारत के महान् संत आचार्य श्री तुलसी के सम्पर्क में आये, उन्होंने साधु जीवन और अणुव्रत व्यवस्था को बहुत नजदीक से परखा। एक सच्ची निष्ठा और लगन के साथ अणुव्रत के नैतिक अभियान के प्रचार कार्य में वे जीवन के अंतिम समय तक जुटे रहे।

महिला अणुव्रत समिति
चूरू
दिनांक २१-११-६८

अमराव देवी बांठिया

जो अब नहीं रहे

जिस चुनौती का कोई जवाब नहीं वह उन्हें दिनांक २० सितम्बर ६८ को सदा के लिये ले गई। कितने सरल, मधुर और स्वस्थ सहजता के धनी थे पं० श्री कुञ्जविहारीजी शर्मा। हम उन्हें भुला नहीं सकते। जन्म लेना और चले जाना दुनियां का शाश्वत नियम है, लेकिन घटना वह विशेष दुःखद होती है जब जाने वाले का रिक्त स्थान पूर्ति होता दिखाई नहीं देता। वे जब से भारत के महान् संत आचार्य श्री तुलसी के सम्पर्क में आये उन्होंने साधु जीवन और व्यवस्था को बहुत नजदीक से परखा। एक सच्ची निष्ठा और लगन तक अभियान के प्रचार कार्य में वे जीवन के अंतिम समय तक जुटे साहित्यकार स्व० विहारीजी की मधुर याद चूरू वासियों के दिलों रहेगी। हम हृदय से अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

श्वेताम्बर
तेरा पंथी सभा
चूरू

—डूंगरमल कोठारी

सच्चे हितैषी एवं पथ प्रदर्शक

श्री विहारीजी के असामयिक स्वर्गवाससे मैं स्तब्ध होगया। समाचार पढ़ते ही उनका मन्द मुस्कान वाला चेहरा सामने आ गया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो यह समाचार गलत है। दिल को यकीन नहीं हुआ कि वास्तव में कुञ्जविहारीजी चले गये हैं। विहारीजी साहित्य के सितारे थे, उन का साहित्य प्रेम अमर है। वे छात्रों के शिक्षक ही नहीं थे, बल्कि उनके सच्चे हितैषी एवं पथ प्रदर्शक थे। छात्रों को भी उनके प्रति असीम श्रद्धा थी।

उन के निधन से चूरू नगर ही नहीं बल्कि समस्त क्षेत्र को जो हानि हुई है, वह कभी भी पूरी नहीं हो पायेगी। विहारीजी छात्रों के तारे, मित्रों के प्यारे एवं वरिष्ट नागरिकों के दुलारे थे और अब उनके न रहने से प्रत्येक वर्ग एक असह्य दुःख में डूब गया है। जो आता है, वह अवश्य जाता है परन्तु अपने समय पर जाय तो इतना दुःख नहीं होता। मानसिक अशान्ति ने अव्यवस्था सी पैदा करदी है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें—

गवर्नमेन्ट कॉलेज
अजमेर
२८-९-६८

डी० एस० यादव
एम. कॉम; पी. एच.डी;

हाहंत...

हाहंत सुर कुंजविहारी शर्मन्
हित्वाप्रियान् पुत्रकलत्रमित्रान्
नैतादृशोसंतविनीतदृष्टः
द्युलोकयातोऽइतिशोचकूर्मः ॥

चिंतनशील विचारक एवं तार्किक

खासोली का वह संत अध्यापक तप और त्याग की साक्षात् मूर्ति था। वस्तुत: वह रस-सिद्ध व्यक्ति था जिसके यश-शरीर को जरा और मरण का कोई भय नहीं है। कभी कभी सोचता हूँ कि वह योग-भ्रष्ट व्यक्ति था, शापित यक्ष था, जिसे धरा पर किंचित समय के लिये अवतीर्ण होने के लिये बाधित किया गया था और कवि 'ग्रे' (Gray) ने अपनी कविता 'एलिजी' (Elegy) में सागर की अथाह गहराइयों में पड़े बहुत से बहूमूल्य रत्नों एवं वनों में अन देखे खिल कर मुरझा जाने वाले फूलों का जिक्र किया है। परिस्थितियां साथ नहीं देतीं इस लिये रत्नों का कीमतीपन और फूलों का खिलना बेकार हो जाता है। खेद है कि सदियों से अध्यापक के मान-सम्मान के प्रति उदासीन समाज रूपी सागर और वन में हमारा वह चमकता रत्न और विकसित फूल सही रूप में प्रकाश में नहीं आ सका।

तपोपूत पं० विहारी एक आदर्श अध्यापक के रूप में अपना स्थान बनाये रहेगा। निरंतर ज्ञानार्जन और निरंतर ज्ञान-वितरण ही उसके जीवन का ध्येय था। उस व्यक्ति ने अध्यापक जाति को सदा के लिये गौरवान्वित किया है तथा आने वाली पीढियों के लिये प्रकाश-स्तंभ का काम करता रहेगा। उस कर्म-योगी के कार्य का मूल्यांकन कर पाना कठिन है।

विहारी आडम्बरों एवं दिखावों से सदा दूर रहा। वह आडम्बरों एवं दिखावों से कभी समझौता करके नहीं चल सका। वह एक चिन्तन शील विचारक एवं तार्किक था जिसने अपने जीवन में रूढियों तथा समाज को सड़ी गली परम्पराओं से सदा लोहा लिया और एक स्वस्थ समाज के निर्माण की दशा में निरंतर चेष्टा की। उसके आचरण की यह एक मूक सभ्यता बड़ी बलवती थी और उसके परिचितों पर इसका बड़ा भारी प्रभाव था। शिष्यों, साथियों तथा जनता के हजारों लोगों ने अश्रु-सिक्त नेत्रों से उसे जो अंतिम विदाई दी, मरणोत्तर सम्मान प्रदान किया, वह इस बात का पुष्ट प्रमाण था कि लोगों पर उसके सादे रहन सहन एवं ऊंचे विचारों की गहरी छाप थी। सच में ऐसे सम्मान के अधिकारी बहुत कम लोग होते हैं।

मजलिसों एवं महफिलों को सूनी बना कर चला गया वह। वह इतना [illegible]जीव व्यक्ति था कि जहाँ भी वह उपस्थित हो गया हँसी के फव्वारे फूट पड़ते थे। भाई गोविन्दजी अग्रवाल ने बातचीत के दौरान बड़े मार्मिक शब्दों में कहा 'रम्मत ही खतम हो गई।' जिला धीश महोदय ने भी नगर-श्री द्वारा होने वाली शोक-सभा में इस क्षेत्र में उसकी क्षति को अपूरणीय बताया था।

पिछले छ: सात वर्ष से उस मित्र के साथ प्रात: सायं बीड में सह-भ्रमण का सौभाग्य मुझे मिला था। राजनैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विषयों पर बड़ी उपयोगी वार्ताएं होती थीं। गांधी नेहरू के प्रति पूर्ण आस्थावान वह महामना कांग्रेस के ह्रास एव देश व्यापी भ्रष्टाचार से चिंतित था। उसकी प्रबल आकांक्षा थी देश को भ्रष्टाचार मुक्त एवं सबल देखने की। पिछले दो वर्षों में वह कुछ टूटा हुआ सा, बुझा हुआ सा एवं परिश्रान्त सा लगता था। जल्दी जाने की बात भी कभी-कभी कर बैठता था। आज व्यर्थ मैं उन टीलों पर, झाड़ियों के नीचे, फोगों के पास तथा नीमों के पार्श्व में खोजता हूँ उसे। कभी-कभी ध्यान मग्न हुआ प्रतीक्षा में उन स्थानों पर देर तक बैठा रह जाता हूँ।

इन्द्रचन्द्र शर्मा
एम. ए, बी. एड.,

आदर्श अध्यापक

अनभ्र वज्र पात की तरह आपके पत्र से श्री कुञ्जविहारीजी शर्मा के आकस्मिक निधन का दुःखद समाचार सुन कर न केवल शोकाकुलता ही हुई, अपितु श्री शर्माजी जैसे आदर्श अध्यापक एवं वरिष्ठ साहित्यकार के चले जाने से नगर को होने वाली क्षति का चिन्तन कर मर्मान्तक पीडानुभूति भी हुई।

कुञ्जविहारीजी मेरे बचपन के निकटतम स्कूल मित्र रहे थे। उनके स्वभाव में जहाँ सरलता निश्छलता एवं शुचिता थी, वहाँ व्यवहार में मृदुता परिहास तथा स्नेहास्पद भावना का दर्शन होता था।

जीवन के मध्य शिखर पर आरूढ होते ही उन्होंने चूरू नगर के जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। वे शिक्षा जगत के प्राण थे तथा छात्रों के परम प्रिय अध्यापक थे। यही कारण था कि जिसने एक बार उन से भेंट करली, जीवन में उन्हें कभी भुला नहीं पाया। निश्चय ही उनका वियोग हम सब के लिये असह्य है। उनकी स्मृति में जो कुछ भी किया जायेगा, वह उनका नहीं, अपितु उनके माध्यम से आदर्श शिक्षक तथा शिक्षा का सम्मान होगा।

"चन्द्र-ग्रहण"

शरद् पूर्णिमा का दिन। कितना सुहावना। कितना प्रेरणाप्रद। माँ सरस्वती के विलास का दिन।

देखा तो चन्द्र कुछ उदास सा नजर आ रहा है। शशि म्लान क्यों? उज्ज्वल चेहरे पर यह कालिमा क्यों? ज्योत्सना विलीन होने लगी। एकाएक याद आया "चन्द्रग्रहण"।

मन में म्लानता आयी। क्रोध और घृणा के भाव प्रस्फुटित होने लगे। यह है नियति का क्रूर विधान। क्या इस संविधान में परिवर्तन नहीं किया जा सकता? नहीं। लक्षाब्दियों से यही क्रम चलता आया है।

आत्मा ने मुझे समझाया कि तुम एक आकाश के चन्द्र को देखकर क्लान्त तथा विगलित से हो रहे हो पर इस धरा पर न जाने कितने सूर्य और चन्द्र उगे, चमके और अस्तास्त हो गये। कौन रोता है? कौन किसको याद रखता है?

भीतर एक हलचल सी मच गई। जैसे हमारा कुछ खो गया। कौन खो गया? क्या खो गया? कैसे खो गया? प्रश्न पर प्रश्न। उत्तर कौन दे? आत्मा, मन और शरीर स्तब्ध हो गये।

स्तब्धीकरण अधिक देर न चल सका। भयंकर विस्फोट हुआ। शरीर का रोम रो रहा था। प्रत्येक रोम रोम से जलपात हो रहा था। तभी मेरी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो गई।

एक उज्ज्वल परिधान पहने आत्मा प्रकट हुई। मुझ से बोली क्या तुम रोते हो? रोना तो कायरों का काम है। मैं मरा नहीं हूं। तो क्या आप जीवित हैं?

हां मैं जीवित हूं। क्या कालिदास और तुलसीदास मर गये? नहीं। तब फिर मैं कैसे मर सकता हूं। जब तक विद्या और साहित्य ज्योति जगती रहेगी, तब तक मैं अमर रहूंगा। चूरू से यह ज्योति जिस दिन बुझ जायेगी, उसी दिन मुझे मरा समझना।

"फिर दर्शन कब होंगे?" मैंने डरते डरते पूछा।

दर्शन? चूरू के प्रत्येक छात्र में मेरा दर्शन कर सकते हो।

मैं प्रकृतिस्थ हुआ। बाह्य संसार का ज्ञान हो गया। चन्द्र शुद्ध हो... मन भी शुद्ध हो गया।

गिरिधर चोटि...

...द, साहित्य रत्न, प्रभाकर
...र, बागला उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
१०-१०-६८

निर्मल आत्मा

श्री कुञ्जविहारीजी के निधन का दुःखद और आकस्मिक समाचार सुन कर सहसा विश्वास नहीं हुआ। कभी ऐसी कल्पना भी न की थी कि इतना अटूट स्नेह रहते हुए वे यों बिना मिले ही अचानक स्वर्गारोहण कर जायेंगे। मेरा दुर्भाग्य है कि मैंने एक चरित्रवान् सच्चा साथी खो दिया। आज करीब २५ साल से ऊपर हो चुके जब किन्ही पूर्व-जन्म के सस्कारों से मास्टर साहब से हमारा सम्पर्क जुड़ा था। इतने लम्बे अर्से में मैंने कभी भी उनमें अहं भाव नहीं देखा और उनके सान्निध्य से मुझे हर जगह जो सम्मान मिला, उसे मैं जीवन भर नहीं भुला सकता। उनसे सदैव अच्छी शिक्षा और अच्छी राय ही मिलती थी और हमारे लिये उन्होंने जीवन में कितना कुछ किया वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

अपनी विद्वत्ता, सादगी और धार्मिक सहिष्णुता के कारण वे हमारे परमाराध्य आचार्य श्री एव अन्य सन्तों की सेवा का लाभ लूट सके। अपनी भाषण शैली से वे सबका मन हर लेते थे। उन की योग्यता और विद्वत्ता का साक्षात् परिचय हमारे सामने जीवन भर नहीं भुलाने वाली मुनि श्री चंदनमल जी महाराज की रचनाओं का संग्रह "मलयज की महक" और उसी पुस्तक में लिखी गई उनकी भूमिका है, जिसके अमृतमय वाक्यों ने हर पाठक का मन मोह लिया और जो आज भी हृदय पर छाये हुए हैं। आपके उर्वर मस्तिष्क के कठिन परिश्रम से निर्मित अनुव्रत चित्रावली के करीब ६० चित्रों का दुर्लभ संग्रह हमारी अमूल्य निधि है। उनकी विद्वत्ता भरे न जाने कितने पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं जिनको बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं भरता।

हमारे परिवार और हमारे सगे-सम्बन्धियों से उनका कितना गहरा स्नेह था?

परमात्मा उन्हें सुख और शान्ति दें। मेरी तो निरंतर यही कामना रहेगी।

—मंगलचन्द सेठिया

सेठिया हाउस
१, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता।
दि० ३-१०-६८

...तित्व और ममत्व के मिश्रण

...मय से चलती आ रही कष्ट साध्य रुग्णता भले ही उस महा-
...न के प्रति कुछ आशंका उत्पन्न करने लगी थी, किन्तु फिर भी
...आघात सहन करने की घड़ी इतनी शीघ्र उपस्थित हो जावेगी
...हीं की थी। विधि की विडम्बना का यह दुःखद संवाद जब
...तो मन को बड़ा आघात लगा, किन्तु आत्मा ने कहा, "देवात्मा
...रा करके ब्रह्म में विलीन हो गई। अब शोक से क्या लाभ?"
...ने स्मृतियां होते होते सजीव होने लगीं। बात उन दिनों की
...या छठी कक्षा में पढ़ता था सदा की भांति पूज्य पण्डितजी
... घर पर स्वाध्याय कराने हेतु आये हुए थे। मां ने मेरी कोई
... को लिख भेजी, इस पर उन्होंने (पहली और अन्तिम बार)
...चांटे भी जड़ दिये और फिर माफी मांगने के लिए मां के
...में. जब मां से क्षमा याचना कर के लौटा तो पण्डितजी
...ये बैठे थे। अपने पास बिठला कर उन्होंने प्रेम से मेरे
... देर तक द्रवित होते रहे।

...या और कहीं बाहर से लौटकर आने पर जब प्रणमन
...पूर्व कि मैं उन्हें प्रणाम करूं, उनका वरद हस्त उठ
...नों वे सहज मुस्कान में प्रस्फुटित अपना आंतरिक
...ों। ऐसे थे महामना पण्डितजी, जिनके प्यार और
... हम चारों भाइयों का जीवन भरा पड़ा है, कहना
...ों से शुरू होने वाली पीढ़ी के लिए तो वे वरदान-

...म के पर्याय रूप पण्डितजी अपने अनुपम ...
... सभी को विहार करने के लिए छोड़कर चले गए
...काल तक तृप्ति प्रदान करना रहेगा। उन्हें
...र अपने जीवन में उतार सका तो ...
...

कर्त्तव्य और ममत्व के मिश्रण

कुछ समय से चलती आ रही कष्ट साध्य रुग्णता भले ही उस महामानव के जीवन के प्रति कुछ आशङ्का उत्पन्न करने लगी थी, किन्तु फिर भी यह अनचाहा आघात सहन करने की घडी इतनी शीघ्र उपस्थित हो जावेगी ऐसी कल्पना नहीं की थी। विधि की विडम्बना का यह दुःखद संवाद जब बम्बई में मिला तो मन को बड़ा आघात लगा, किन्तु आत्मा ने कहा, "देवात्मा अपना कर्त्तव्य पूरा करके ब्रह्म में विलीन हो गई। अब शोक से क्या लाभ?"

अतीत की स्मृतियां होले होले सजीव होने लगीं। बात उन दिनों की है जब मैं पांचवीं या छठी कक्षा में पढ़ता था सदा की भाँति पूज्य पण्डितजी हम सब भाइयों को घर पर स्वाध्याय कराने हेतु आये हुए थे। मां ने मेरी कोई शिकायत पण्डितजी को लिख भेजी, इस पर उन्होंने (पहली और अन्तिम बार) डांटा, एक दो चांटे भी जड़ दिये और फिर माफी मांगने के लिए मां के भेजा। लेकिन मैं जब मां से क्षमा याचना कर के लौटा तो पण्डितजी ...ं अश्रुपूरित नेत्र लिये बैठे थे। अपने पास बिठला कर उन्होंने प्रेम से मेरे ... खुद कई देर तक द्रवित होते रहे।

... बम्बई या और कहीं बाहर से लौटकर आने पर जब प्रणाम ... तो इससे पूर्व कि मैं उन्हें प्रणाम करूं, उनका वरद हस्त उ... ...न लगता मानो वे सहज मुस्कान में प्रस्फुटित अपना आंतरि... पर उडेल रहे हों। ऐसे थे महामना पण्डितजी, जिनके प्यार और ... अनेक प्रसङ्गों से हम चारों भाइयों का जीवन भरा पड़ा है, कहना ... कि हम चारों भाइयों से शुरू होने वाली पीढ़ी के लिए तो वे वरदान... ही थे।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के पर्याय रूप पण्डितजी अपने अनुपम आदर्शों का कुञ्ज लगाकर उसमें हम सभी को विहार करने के लिए छोड़कर चले गये हैं और वह कुञ्ज विहार चिरकाल तक तृप्ति प्रदान करता रहेगा। उनके आदर्शों का अंश मात्र भी अगर अपने जीवन में उतार सका तो अपने आपको कृतार्थ समझूंगा और यही उनके प्रति मेरी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

बम्बई, ...-६२ —फतेहचंद [illegible]

कर्मठ सेनानी

२० सितम्बर १९६८ की वह मनहूस दो पहर, जब मृत्यु के अदृश्य क्रूर हाथों द्वारा नगर की एक सौम्य मूर्ति चूर्ण हो गई, लहलहाते उपवन का वह सौरभ बिखेरता पुष्प, अकाल में ही एकाएक सूख कर डठल से टूट पड़ा, हमेशा दु.ख के साथ याद की जायेगी।

'विहारीजी' के आकस्मिक व असामयिक निधन से सारा समाज हतप्रभ हो उठा, ठगा सा रह गया। हर तरफ से यही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी कि 'खो गया', 'खो गया'। वास्तव में नागरिकों ने एक सुयोग्य नागरिक, समाज ने एक पथ-प्रदर्शक, साहित्यिकों ने एक मूक साहित्य सेवी, साथियों ने एक विश्वसनीय साथी एवं छात्रों ने एक आदर्श गुरु खो दिया।

सभी उनके सरल, सात्विक एवं आदर्शोन्मुख जीवन से प्रभावित थे। उनका सारा जीवन त्याग, साहित्य आराधना व शिक्षा प्रसार में ही बीता। उन्होंने शिक्षा, साहित्य व समाज से सम्बन्धित अनेक विषम प्रश्नों पर एक मौलिक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत नहीं किया अपितु क्रियात्मक परम्परा के अनुरूप इन सबको अपने जीवन में उतारा भी। आत्म विज्ञापन व बाह्य प्रदर्शन से कोसों दूर रहने वाले, दोषों में भी गुण ढूंढने वाले उस जन्मजात शिक्षक में एक ऐसा आकर्षण था कि उनके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसका अपना बन जाता था व उसके व्यक्तित्व की एक अमिट छाप उसपर पड़ जाती थी।

यद्यपि उनका शरीर जर्जर होता जा रहा था परन्तु आत्मा युवा थी। वे जब तक जिये शान से जिये। संघर्ष के समय में भी वे धीर, वीर योद्धा की तरह दिखाई पड़ते थे। यहां तक कि उन्होंने सर्वग्रासिनी क्रूर मृत्यु का भी मुस्कराते हुए स्वागत किया। मृत्यु की भयानकता भी उनको भयभीत नही कर सकी, वे उसको, जब तक उनकी पार्थिव देह धरती मां में एक रूप नहीं करदी गई, खुले नेत्रों से निहारते रहे।

उस महावट की छांह तले पता नहीं कितनों ने आश्रय पाया—फूले व फले। उसके अचानक भूमिसात होने पर कितनी क्षति हुई इसका अनुमान तो केवल भुक्तभोगी ही लगा सकते हैं। वह चला गया, सदा-सर्वदा के लिए चला गया। अगर कुछ शेष रहा तो उसके चिर वियोग पर आहें तथा आंसू।

मैं उस गो लोक वासी साथी को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ पर जिस बेल को उन्होंने अपने जीवन काल में बोया, पाला और सींचा उसको फूलित, फलित करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

कर्त्तव्य और ममत्व के मिश्रण

कुछ समय से चलती आ रही कष्ट साध्य रुग्णता भले ही उस महामानव के जीवन के प्रति कुछ आशङ्का उत्पन्न करने लगी थी, किन्तु फिर भी यह अनचाहा आघात सहन करने की घड़ी इतनी शीघ्र उपस्थित हो जावेगी ऐसी कल्पना नहीं की थी। विधि की विडम्बना का यह दुःखद संवाद जब बम्बई में मिला तो मन को बड़ा आघात लगा, किन्तु आत्मा ने कहा, "देवात्मा अपना कर्त्तव्य पूरा करके ब्रह्म में विलीन हो गई। अब शोक से क्या लाभ?"

अतीत की स्मृतियां होले होले सजीव होने लगीं। बात उन दिनों की है जब मैं पांचवीं या छठी कक्षा में पढ़ता था सदा की भाँति पूज्य पण्डितजी हम सब भाइयों को घर पर स्वाध्याय कराने हेतु आये हुए थे। मां ने मेरी कोई शिकायत पण्डितजी को लिख भेजी, इस पर उन्होंने (पहली और अन्तिम बार) मुझे डांटा, एक दो चांटे भी जड़ दिये और फिर माफी मांगने के लिए मां के पास भेजा। लेकिन मैं जब मां से क्षमा याचना कर के लौटा तो पण्डितजी स्वयं अश्रुपूरित नेत्र लिये बैठे थे। अपने पास बिठला कर उन्होंने प्रेम से मेरे आंसू पोंछे और खुद कई देर तक द्रवित होते रहे।

अब भी बम्बई या और कहीं बाहर से लौटकर आने पर जब प्रणाम के लिए जाता तो इससे पूर्व कि मैं उन्हें प्रणाम करूं, उनका वरद हस्त उठ जाता और ऐसा लगता मानो वे सहज मुस्कान में प्रस्फुटित अपना आंतरिक स्नेह मुझ पर उडेल रहे हों। ऐसे थे महामना पण्डितजी, जिनके प्यार और ममत्व के अनेक प्रसङ्गों से हम चारों भाइयों का जीवन भरा पड़ा है, कहना चाहिए कि हम चारों भाइयों से शुरू होने वाली पीढ़ी के लिए तो वे वरदानस्वरूप ही थे।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के पर्याय रूप पण्डितजी अपने अनुपम आदर्शों का कुञ्ज लगाकर उसमें हम सभी को विहार करने के लिए छोड़कर चले गये हैं और यह कुञ्ज विहार चिरकाल तक तृप्ति प्रदान करता रहेगा। उनके आदर्शों का अंश मात्र भी अगर अपने जीवन में उतार सका तो अपने आपको कृतकृत्य समझूंगा और यही उनके प्रति मेरी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

चूरू, ३-५-६६

—फतेहचंद भीमसरिया

प्रज्ञा बुद्धि के परिचायक

पं० कुञ्जबिहारीजी के अकस्मात् निधन की सूचना सचमुच अत्यन्त दुःखद रही। मेरा उनसे बहुत अधिक व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं रहा है। विद्या-पीठ में मैं उनका सहपाठी नहीं था। वे मुझ से बहुत बड़े थे और शायद मेरे आचार्य गुरुवर पं० रामनारायणजी एवं पं० मुरलीधरजी के साथ उन्होंने साहित्यरत्न की परीक्षा दी थी। जहां तक मुझे उनका स्मरण है, वे अत्यन्त ही हंसमुख व्यक्ति थे, और जहां जाते वहीं के वातावरण को प्राणवंत बना देते थे। इसके अतिरिक्त उनकी एक बात जिसने कि मुझे अत्यन्त प्रभावित किया और मेरे मन में उनके प्रति अज्ञातजन्य समरसता जागृत की—वह थी उनकी बुद्धिवादिता। पुरातन विश्वासों के प्रति आंख मूंद कर चलने वाली धर्मान्धता मैंने उनमें नहीं देखी। इसीलिये मेरी बुद्धिवादी विचार धारा को वे अत्यन्त प्रिय लगे। वे कालीजी के मन्दिर की पाठशाला के अध्यापक थे, परन्तु काली के प्रति उनकी बुद्धिवादी अभिव्यञ्जना उनकी असीम प्रज्ञाबुद्धि की परिचायक है। मैंने अपने सहपाठी और अभिन्न मित्र स्वर्गीय भाई घासीरामजी के मुख से कुञ्जबिहारीजी की एक कविता सुनी थी जिसका कि प्रभाव मेरे मन पर बहुत गहरा पड़ा। उनकी इस कविता के प्रारम्भिक चार पद तो २५ वर्ष के बाद अब तक भी स्मरण हैं, वे हैं-

भुवन भू लुंठित लाजों में,
मृत्यु के भैरव बाजों में
तू मुरदों का मधपान करे
कैसे कोई सम्मान करे ?

जीव बलि लेने वाली काली की इससे बढ़कर और क्या भर्त्सना हो सकती थी? मेरे बुद्धिवादी मस्तिष्क पर इस रचना का कुछ ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि पिछले दशहरे पर मैंने जिस तुकबन्दी की रचना की वह एक प्रकार से इन चार पदों का ही विस्तृतकरण था। यही भाव बार-बार मेरे मन में गूंज रहे थे, जिनका कि सरल सहज पोषण भगवान तथागत के निर्मल उपदेशों ने किया। कुञ्जविहारीजी की यह कविता अगर मुझे कहीं से पूरी प्राप्त हो जाती तो मैं इस बात का निरीक्षण-परीक्षण कर पाता कि मेरी सम्पूर्ण रचना में उनकी काव्य कृति का कितना भाव स्पष्ट प्रतिबिम्बित हुआ है और इस दिशा में मैं उनका कितना ऋणी हूं।

रंगून

—: प्रगाढ़ स्नेही :—

श्री कुञ्जविहारीजी से मेरा साक्षात्कार सर्व प्रथम स्व० श्री ... आचार्य के माध्यम से ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूरू में सन् १९४७ ई० मास में हुआ था। सरल स्वभाव, सादा पहनाव, विद्या में प्रवीण और मित भाषी, ऐसे सुहृद को पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। धीरे धीरे ... बढ़ती ही गई और दोनों प्रगाढ़ स्नेह सूत्र में बंध गये। वे मुझे प्यार से "बावजी" कह कर ही सम्बोधन करते थे। जब मैं अपनी तुक बन्दी ... सामने रखता तो सुमधुर स्मित हास्य में कहते "गोविन्द कै कनै वाल... बठैई खोल सावणी लगा कर सुवारस्यां।" फिर दोनों, भाई गोविन्द... के यहां आते और घंटों तक सरस साहित्य गोष्ठी चलती रहती, अनेक ... की चर्चाएं होतीं, वातावरण हँसी के ठहाकों से गूंजता रहता। लेकिन ... सारी बातें स्वप्न सी लगती हैं। श्री विहारीजी की बातें याद कर के ... विकलता होती है, आंखें भर भर आती हैं। ईश्वर उन्हें चिर शान्ति ... करें।

वैद्य चन्द्रशेखर ...

श्रीवर आयुर्वेद भवन,
चूरू
१-२-६२

सम्पर्क ... अधीर ... शरीर ... अपनी ... व्यस्त ... लाए। ... चिकि... त्सक ... होंगे, ... उन में
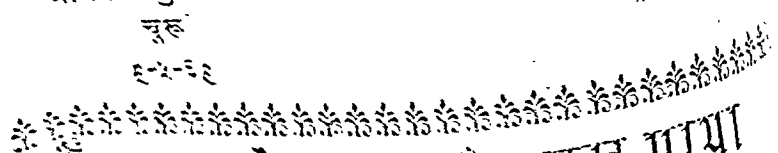
जब देखा तब हँस मुख पाया

जब देखा तब हँस मुख पाया, जाने कितना द्रव्य कमाया।
खुले हृदय से मुक्त हस्त से, भर-भर झोली ज्ञान लुटाया।
बिना अहं के और न देखा, देने वाला दानी दाता।
नगर तुम्हारे ज्ञान दानकी, बहती देखी गंगा माता।
जिसमें ... के स्नान, बन गये हजारों नौजवान।
है ... चतुर तेरे तत्पर, करते कविता का रसिक पान।
... वह दानवीर, कवि, मित्र, गुरु, सब कुछ खोया ...
... की विधि का लेख अटल ... प्र... घर जा...

... मोम ...

...२-६२

मेरे पथ-प्रदर्शक

जिन गुरुजी का स्मरण करते ही एक सरल, त्यागी, तपस्वी, चरित्रवान् और साहित्यिक देश-भक्त का साक्षात रूप आंखों के सामने आ जाता है—उनको मैं प्रणाम करता हूँ। चूरू की जनता उनके इन गुणों से भली भांति परिचित है। मैं उनका "फेमिली डाक्टर" था, यह मेरा सौभाग्य था। उनकी छत्र-छाया में चार वर्ष तक एक शिष्य के रूप में रह कर बहुत कुछ सीखा।
दिनांक १४ सितम्बर १९६७ सायं काल के करीब ७ बजे थे। मैं अस्पताल में रामगोपाल जोशी, श्री पृथ्वीसिंहजी और श्री सत्यनारायण चोमाल के साथ बैठा था। गुरुजी उधर से जा रहे थे। मैंने अपना सदा का सम्बोधन (जो उन को बुलाने के लिये करता था) किया—"बांह छुड़ाये जात हो·········।" यह कड़ी सुन कर वे जोर से हँस देते और आ जाते। हम सब मिल कर साहित्यिक और राष्ट्रीय समस्याओं पर ही चर्चा करते थे। उस दिन अनायास ही मैं कह बैठा कि गुरुजी मैं अब सैनिक सेवाओं के लिये आर्मी मेडिकल कोर (ARMY MEDICAL CORPS) में जाना चाहता हूँ। मैं भी देश के लिये कुछ करना चाहता हूँ।

गुरुजी बोले—डाक्टर साहब, शायद आप चूरू की जनता और गुरु जन वर्ग से तंग आ गये हैं। ये सब कहां जायेंगे? आपके जाने की तो हम सोच भी नहीं सकते। अगर यूं जाना ही था तो हम लोगों को अपनाने की क्या आवश्यकता थी। फिर गुरुजी कुछ देर तक सोचते रहे, और बाद में बड़े गंभीर शब्दों में कहा—डा० साहब आप एक ऐसी मंजिल की तरफ बढ़ रहे हैं जिसमें भगवान आप को यश और उन्नति देगा। इस लिये रोकूंगा नहीं आप अपने गांव बाड़मेर और चूरू की जनता के प्रतीक हैं। गरीबों की आवाज कभी मत भूलना। कृष्ण भी तो मथुरा चले गये थे। गुरुजी की आंखों में उस समय आंसू टपक रहे थे। कितना वात्सल्य पूर्ण हृदय था। मैंने कहा गुरुजी कृष्ण वृंदावन को कब भूल पाये थे? "ऊधो मोहे ब्रज बिसरत नाहिं ......।"

दिनांक २२-७-६८, चूरू से लखनऊ के लिये विदा हो रहा था क्योंकि राजस्थान से आर्मी-मेडीकल कोर के लिये मैं चुना गया था, सुबह १० बजे श्री पृथ्वीसिंहजी और सत्यनारायण चोमाल के साथ गुरुजी के दर्शन करने गया। माताजी अन्दर से दूध के गिलास लाईं। लेकिन पीये कौन? बोले कौन? सब की आखों से आंसुओं की अविरल धारा बह रही थी। गुरुजी की मूक वाणी कह रही थी—"मेरे प्यारे डाक्टर जाओ-सुखी रहो। देश की आवाज में चूरू की आवाज कभी मत भूलना। चिरजीव रहो।" स्वप्न में भी नहीं

—: प्रगाढ़ स्नेही :—

श्री कुञ्जविहारीजी से मेरा साक्षात्कार सर्व प्रथम स्व० श्री बद्रीप्रसादजी आचार्य के माध्यम से ऋषिकुल ब्रह्मचर्य्याश्रम चूरू में सन् १९४७ के अक्टूबर मास में हुआ था। सरल स्वभाव, सादा पहनाव, विद्या में प्रवीण और मधुर मित भाषी, ऐसे सुहृद को पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। धीरे धीरे आत्मीयता बढती ही गई और दोनों प्रगाढ़ स्नेह सूत्र में बंध गये। वे मुझे प्यार से सदा "बाबजी" कह कर ही सम्बोधन करते थे। जब मैं अपनी तुक बन्दी उनके सामने रखता तो सुमधुर स्मित हास्य में कहते "गोविन्द कै कन्नै चालस्यां अर बठैई स्पोल साधणी लगा कर सुधारस्यां।" फिर दोनों, भाई गोविन्द अग्रवाल के यहां आते और घंटों तक सरस साहित्य गोष्ठी चलती रहती, अनेक प्रकार की चर्चाएं होतीं, वातावरण हँसी के ठहाकों से गूंजता रहता। लेकिन अब वे सारी बातें स्वप्न सी लगती हैं। श्री विहारीजी की बातें याद कर के चित्त में विकलता होती है, आंखें भर भर आती हैं। ईश्वर उन्हें चिर शान्ति प्रदान करें।

श्रीधर आयुर्वेद भवन,
चूरू
६-५-६६

वैद्य चन्द्रशेखर व्यास

जब देखा तब हँस मुख पाया

जब देखा तब हँस मुख पाया, जाने कितना द्रव्य कमाया।
खुले हृदय से मुक्त हस्त से, भर-भर झोली ज्ञान लुटाया।
बिना अहं के और न देखा, देने वाला दानी दाता।
मगर तुम्हारे ज्ञान दानकी, बहती देखी गंगा माता॥
जिसमें बच्चे कर के स्नान, बन गये हजारों नौजवान।
हे काव्य चतुर तेरे तटपर, करते कविता का रसिक पान।
वह गंगा तट, वह दानवीर, कवि, मित्र, गुरु, सब कुछ खोया।
विधना की विधिका लेख ओढ, 'रज' वह प्रभु के घर जा सोया॥

चूरू, २९-८-६८

चिरंजीलाल ओझा 'रज'

मेरे पथ-प्रदर्शक

जिन गुरुजी का स्मरण करते ही एक सरल, त्यागी, तपस्वी, चरित्रवान् और साहित्यिक देश-भक्त का साक्षात रूप आँखों के सामने आ जाता है— उनको मैं प्रणाम करता हूँ। चूरू की जनता उनके इन गुणों से भली भांति परिचित है। मैं उनका "फेमिली डाक्टर" था, यह मेरा सौभाग्य था। उनकी छत्र-छाया में चार वर्ष तक एक शिष्य के रूप में रह कर बहुत कुछ सीखा। दिनांक १४ सितम्बर १९६७ सायं काल के करीब ७ बजे थे। मैं अस्पताल में रामगोपाल जोशी, श्री पृथ्वीसिंहजी और श्री सत्यनारायण चौमाल के साथ बैठा था। गुरुजी उधर से जा रहे थे। मैंने अपना सदा का सम्बोधन (जो उन को बुलाने के लिये करता था) किया—"बांह छुड़ाये जात हो···——।" यह कड़ी सुन कर वे जोर से हँस देते और आ जाते। हम सब मिल कर साहित्यिक और राष्ट्रीय समस्याओं पर ही चर्चा करते थे। उस दिन अनायास ही मैं कह बैठा कि गुरुजी मैं अब सैनिक सेवाओं के लिये आर्मी मेडिकल कोर (ARMY MEDICAL CORPS) मे जाना चाहता हूँ। मैं भी देश के लिये कुछ करना चाहता हूँ।

गुरुजी बोले—डाक्टर साहब, शायद आप चूरू को जनता और गुरु जन वर्ग से तग आ गये हैं। ये सब कहां जायेंगे? आपके जाने की तो हम सोच भी नही सकते। अगर यूँ जाना ही था तो हम लोगों को अपनाने की क्या आवश्यकता थी। फिर गुरुजी कुछ देर तक सोचते रहे, और बाद मे बड़े गभीर शब्दों में कहा—डा० साहब आप एक ऐसी मजिल की तरफ बढ रहे हैं जिसमें भगवान आप को यश और उन्नति देगा। इस लिये रोकूंगा नही आप अपने गांव बाड़मेर और चूरू की जनता के प्रतीक हैं। गरीबों की आवाज कभी मत भूलना। कृष्ण भी तो मथुरा चले गये थे। गुरुजी की आंखों में उस समय आंसू टपक रहे थे। कितना वात्सल्य पूर्ण हृदय था। मैंने कहा गुरुजी कृष्ण वृंदावन को कब भूल पाये थे? "ऊधो मोहे ब्रज बिसरत नाहिं ——।"

दिनांक २२-७-६८, चूरू से लखनऊ के लिये विदा हो रहा था क्योंकि राजस्थान से आर्मी-मेडीकल कोर के लिये मैं चुना गया था, सुबह १० बजे श्री पृथ्वीसिंहजी और सत्यनारायण चौमाल के साथ गुरुजी के दर्शन करने गया। माताजी अन्दर से दूध के गिलास लाईं। लेकिन पीये कौन? बोले कौन? सब की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह रही थी। गुरुजी की मूक वाणी कह रही थी—"मेरे प्यारे डाक्टर जाओ-सुखी रहो। देश की आवाज में चूरू की आवाज कभी मत भूलना। चिरजीव रहो।" स्वप्न में भी नही

सोचा था कि यह अंतिम भेंट होगी। उनके शाश्वत स्वर अब भी कानों में गूंज रहे हैं, और सचमुच ही गुरु कुञ्जविहारीजी "बांह छुड़ा कर चले गये।"

वह २० सितम्बर १९६८ का दिन था—शायद इस त्यागी पुरुष के निधन पर तो भगवान् को भी दुःख हुआ होगा।

"हजारों उनसे मुकद्दर ने की दगा लेकिन,
उन को मिटा के मुकद्दर को भी सुकूं न मिला।"

AMC.
आफिसर्स मैस
लखनऊ—२
ता० ८-१०-६८

कैप्टिन डा० शंकरलाल
आर्मी मेडिकल कोर

शत शत प्रणाम....

धार दूध की दे कर के, माँ ने अधरों को खोल दिया।
इन खुले अधूरे अनबोले, अधरों को तुमने बोल दिया॥

तुम तो ममता की मूरत थे, यह परिवर्तन क्यों कर भाया।
इस तरह अचानक क्या सूझी, उड़ गये छोड़ कर के काया॥

ो हग, मुस्काने वाले, देखो इस खड़े नजारे को।
ण भर फिर सो जाना, मत सुनना अगर पुकारें तो॥

कभी बात न जिन की टाली थी, क्या आज टाल कर खो दोगे।
मैं कहता हूं मुंह चूमोगे, देखोगे तो सच रो दोगे॥

ा भोली आंखों से अश्रु का अर्घ लिये जाओ।
कर के मृत्यु को भी जीने का सबक दिये जाओ॥

जाओ गुरु देव तुम्हारे स्वर, गुरु गंगा के हैं दीपदान।
हर शब्द मार्ग का दर्शक है, शत शत प्रणाम शत शत प्रणाम॥

-श्री, चूरू
२८-९-६८

—प्रेमप्रकाश अग्रवाल

A Guide, Friend & Philospher

The insatiable, relentlessly cruel hands of death served a tragic blow to the town of Churu by snapping away so stealthily, so beloved a citizen as Vihariji—the pet name of Pt. Kunj Vihariji Sharma, a household name with reverence.

I can claim some intimacy with the deceased during the last two decades that I am here. He was in Government service as a teacher with mediocre means which are the circumstances that circumvent the inherent growth of any average man. Yet the fact that Vihariji left his stamp and impress on every field of activity in Churu town, speaks volumes for the versatility of his personality.

As I look back, I find it difficult to remember any function, any activity of any institution, society or sect
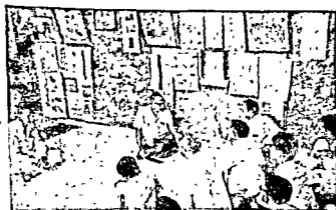
The three Corners of a triangle– a doctor, an administrator and a teacher considering seriously a point raised by Shri Vihariji, the teacher.

that was not enlivened by his learned as well as witty participation. He shed lustre where ever he sat or spoke. By his simplicity, sociability, erudition and above all truthfulness, he was known and loved by all—rich or poor, high or low, men or women, young or old.

His real greatness lay in his sincerity and earnestness, his lofty idealism concurrent with action. That all made him an ideal citizen. He was so very simple and humble in his ways of life. His life was a multifaceted prism, bringing forth variegated, colourful, calming beams of light. To enumerate his specific actions in social, cultural, educational and moral spheres, will mean a volume in itself But his special heart-borne interest had been in making the young boys inherently great. He had a special core in his heart for his students. It was, may I say, his hobby, his mission to deal with them in his own, peculiar charming ways to instil in them the real character —the crying need of the day.

The more I think, the more I feel, it is difficult to he void created by the sad demise of my friend in fact riend of all, Vihariji.

I end with sorrowful tears in ink on this paper ' for his peace in Heaven and praying that his y may live ever-green in the annals of Churu, as a , friend and philospher. May his simplicity, sincerity greatness as a citizen prove highly infectious to the ving nation to steer clear of all Herculian tasks before mother country.

X-Ray, Laboratory &
Medical Clinic

Churu, 30-9-1968

Dr. Inderjit
L.S.M.F. (Pb.)

An Eminent Literary Teacher

I am in receipt of your letter dated 23rd Sept. 1968, informing of the premature demise of Shri Kunj Vihari Sharma, an eminent literary teacher of Churu City. I join in your Condolence and pray for the welfare of the soul.

GAJENDRA SINGH

Commissioner, departmental inquiries
Virat Bhawan,
Prithwi Raj Road,
'C' Scheme, Jaipur
Dated the 27th October, 68.

जिन्दगी की राह में जिसने उजाला भर दिया,
ज्ञान का दीपक जला कर के हिये में धर दिया।
खेंच कर के कान दी थी फूक एक दिन याद है,
बढ रहा पथ पर तुम्हारा ही यह आशीर्वाद है।

जाओ गुरुजी वन्दना शत वन्दना गाता हूं मैं।
मार्ग दर्शन के लिए उर में तुम्हें पाता हूं मैं॥

—बाबूलाल भाऊवासा

चूरू,
२३-२-६९

मेरे बापू

मेरे पू० पितामह ने कठिन और विपरीत परिस्थितियों में गुजर कर सर्व प्रथम खासोली ग्राम में विद्या की मशाल जलाई। न कोई साधन था, न कोई सहारा, न कोई मार्ग था, न कोई मार्ग-दर्शक। अभावों का नंगा नृत्य, सामाजिक रूढ़ियों के अभिशाप, अनेक तरह की आपदाओं से घर तहस नहस सा ही था। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में घरेलू विरोध के बावजूद पितामह ने शिक्षा ग्रहण का व्रत लिया और कठिन साधना में जुट गये। मेहनत भरे अध्यवसाय ने सारी निराशा धो डाली। खासोली के वीरान धोरों पर बैठ कर पितामह ने श्रीमद्भागवत, गीता, रामचरितमानस और महाभारत आदि को सितार के सुमधुर स्वरों में मन भर कर गाया, बजाया और सुनाया।

पितामह की कठिन साधना ने आने वाली पीढ़ी को विद्या प्रेमी बनाने का श्रेय प्राप्त किया। उनकी एकलौती दौलत, उनका प्रिय बेटा 'कुञ्ज' विद्यार्थी का रूप धर हाथ में पट्टी बरता ले, घुग्घीदार टोपला ओढ़े और हाथों में चांदी के कड़े पहने उनके साथ खासोली से चूरू की ओर चला। पिता से भी अधिक मां का दुलारा, तनिक दूर जाए यह मेरी भोली दादी को कतई बरदाश्त नहीं था। लेकिन मेरा बेटा पढ़ेगा, पढ़कर बड़ा पंडित बनेगा, यह सोचकर दिल कड़ा कर लेती और उन्हें दादा के साथ कर देती। नित्य घी शक्कर सना एक चूरमे का लड्डू साथ देती और गांव के छोर तक पहुँचाने आती। टीलों के टेढ़े मेढ़े रास्तों में अपने पिता के साथ जाता हुआ कुञ्ज जब दिखाई पड़ना बंद हो जाता भारी मन से घर की ओर मुड़ती। लेकिन जैसे ही सांझ होने को आती उसी जगह आकर अपने लाडेसर की बाट जोहती। दूर के टीले पर से वह अपने पिता के साथ आता दिखाई देता तो 'कुञ्ज-ओ-कुञ्ज' की आवाज [illegible]ती। गोल मटोल देह, बालक कुञ्ज अपनी मां की मीठी पुकार सुनते ही [illegible]ड़ पड़ता। मां लपक कर अपने लाडेसर को गोद में उठा लेती और पुचकार कर कुशल क्षेम पूछती। उस भोली की झोली का सर्वस्व यह कुञ्ज ही तो था। सन्तजी बाबा कहा करते थे कि मां-बेटे की कहानी कई दिनों तक इसी प्रकार चलती रही।

बचपन तरुणाई में बदला, अध्ययन चलता रहा। अच्छा खासा गठीला और हृष्ट पुष्ट शरीर, दूध दही का भरपूर भोजन। श्री भगवती के मंदिर (चूरू) में मां बाप की छत्रछाया और मित्रों के सान्निध्य में स्वर्गीय आनन्द के साथ साधनामय जीवन चलता रहा। होनी आई और मां अपने लाड़ले बेटे

को छोड़कर चली गई। मां के चले जाने से बेटे के जीवन में एक बड़ी रिक्तता आगई, अपनी स्नेहमयी मां को वे बहुत ही याद किया करते थे। जीवन के चौतीसवें बसन्त में पू० पिता (मेरे दादा) चले गये। अलमस्ती का सारा ही वातावरण जैसे एक व रगी समाप्त होगया।

कन्धों पर नई जिम्मेवारी आई तो पिताजी ने उसे धैर्य पूर्वक उठाया। वीरों के वीर पुजारी थे वे, हर वक्त वीरता पूर्ण वातावरण। उनकी अपनी भाषा, अपनी शैली थी, बात कहने का ढंग भी निराला ही था। मैं उन से अनेक विषयों की बातें किया करता और वे मेरे योग्य ही उत्तर देते।

घर के बाहर हम चाहे हिन्दी अंग्रेजी कुछ भी बोलें, लेकिन घर में तो "मारवाड़ी" का ही आधिपत्य है। मैंने उनसे पूछा, "बापू, भगवान कठै रेवे?" इस पर बापू ने अपनी स्वाभाविक मुस्कान के साथ उत्तर दिया—

"अठै डोकरी दादी को भगर बिलोवणो बाजे, हरजसां में सरवण सारखे बेटै की कथा गावै। देराणी जिठाणी मुलक मुलक कर चाकी का घमड़का लगावती होवें। नणद के सागै रिमझिम करती भावजड़ी पाणी की दोघड़ ल्यावें। जिकै आंगणे में नानकिया दही स्यूं मूंडो लिवाड़्यां ई ऊधम करता होवें, भूवा भतीज्यां मंगल गीत गावें। धूणी ऊपर बावे कन्नै बीस पाड़ पोसी बैठ्या ई रेवें, गल्लां करे, बटाउवां की लड़ी लागी रेवें। नाज का कोठलिया भर्‌या रेवें, घास की बागर लागी होवें, गायां रामती होवें, वाछड़िया कूदता होवें, फलतो फूलतो इस्यो घर होवें, बठै भगवान बसे, सारा देई देवता रमें।"

मेरे बापू भी अपने घर के प्रांगन को ऐसा ही देखने की कल्पना किया करते थे और इन्हीं गीतों की पंक्तियां गुनगुनाया करते थे। दुःखी के लिए द्रवित होना, सबका हित चाहना और अपने कर्त्तव्य को ईमानदारीपूर्वक निबाहना आदि उनके स्वाभाविक गुण थे। व्यवहारकुशलता उनका अमोघ अस्त्र था। पैंतालीस वर्षों के चूरू निवास के बाद अपने मित्रों, स्नेहीजनों और परिचितों में एक सुहानी याद छोड़कर २० सितम्बर १९६८ को दोपहर को सदा सर्वदा के लिए चले गये।

मेरे पूज्य पिताजी जाइये, स्वर्ग सिधारिये, आपकी आत्मा को परमशांति प्राप्त हो। गृहस्थी की जो जिम्मेवारियां आप मुझ पर छोड़ गये हैं, उन्हें आपकी इच्छा और योजना के अनुसार ही पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा, मुझे विक्रम दो। अगले जन्म में आप फिर मेरे पूज्य बापू बनकर आना...

—[illegible]

पुराय-स्मरण

काछ द्रढ़ा कर बरसणा, मन चंगा मुख मिट्ठ ।
रण सूरा जग वल्लभा, सो हम बिरला दिट्ठ ॥

इस दोहे के रचयिता के अनुसार ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं, जिनमें उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हों, अर्थात् जो चरित्रवान्, दाता, निर्मल मन, मधुरभाषी, शूरवीर और लोक प्रिय हों। लेकिन स्व० पं० कुञ्जविहारीजी ऐसे ही विरल व्यक्तियों में से थे।

मनुष्य का सबसे अधिक दुर्लभ गुण उस का चरित्रवान् होना है और इस लिए कवि ने सर्व प्रथम इसी की गणना की है। मुझे कई वर्षों तक विहारीजी के निकट संपर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैंने बहुत बारीकी से उन के इस पक्ष को परखा है (भले ही मुझे इस का अधिकार नहीं था), तथा इस जांच परख के आधार पर मैं बल पूर्वक इस बात को कहने की स्थिति में हूं कि विहारीजी एक सचरित्र व्यक्ति थे, उनका दामन चारित्रिक दोषों से रहित था। अपने इसी दुर्लभ गुण के बल पर वे अनेक संभ्रांत घरानों में निर्बाध पहुँचते थे।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि स्व० विहारीजी के हाथों से धातु के टुकड़े बरसते रहते थे, किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि ज्ञान की निर्झरणी उन के मुख से सदा प्रवाहित होती रहती थी और ज्ञान दान (जो द्रव्य दान से कहीं बढ़कर है) देने में वे कभी आलस्य न करते थे। उन का मन चंगा था और वे मन में द्वेष की गांठ बांध कर नहीं रखते थे। यदि किसी जन की कोई बात उन्हें अच्छी न लगती तो वे उसे स्पष्ट शब्दों में कह [illegible]। "मुख-मिट्ठ" वाला गुण तो विहारीजी की वाणी में इतना अधिक था [illegible] व्यक्ति उन की वाणी के लिए तृषित ही रहता था, लेकिन उनकी [illegible] में खुशामद या चापलूसी को स्थान नहीं था। यह सच है कि हाथ में [illegible] या बन्दूक लेकर युद्ध के मैदान में उतरने का अवसर उन के सामने [illegible] आया, लेकिन जीवन संग्राम में उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ा और इस [illegible] से वे कभी विरत नहीं हुए।

दोहे के अन्तिम गुण के अनुसार लोक प्रिय बन पाना तो और भी दुष्कर है, लेकिन विहारीजी को इतनी अधिक लोक-प्रियता प्राप्त हुई कि कभी कभी ईर्षा होती थी। किसान, मजदूर, विद्वान्, दार्शनिक, बालक, युवा और वृद्ध सभी के वे स्नेह भाजन थे।

दोहे के उपरोक्त छ: गुणों के अतिरिक्त भी विहारीजी में एक और विशिष्ट गुण था और वह यह कि वे सदैव दूसरों के गुणों को ही देखते थे, अवगुणों को नहीं। यदि किसी व्यक्ति में तीन अवगुणों के साथ एक गुण भी होता तो विहारीजी को दृष्टि उस गुण पर ही केन्द्रित होती थी। अपने अवगुणों की अधिकता के कारण वह व्यक्ति भले ही स्वयं अपने गुण को न जान सके, लेकिन विहारीजी उस गुण की कुशलता पूर्वक सराहना कर के उसे प्रोत्साहित करते थे। विहारीजी की लोक प्रियता का यह एक रहस्य था।

विहारीजी का पूरा नाम पं० कुञ्जविहारी शर्मा बी० ए०, साहित्यरत्न था, माता-पिता शायद नाम के पूर्वार्द्ध 'कुञ्ज' का अधिक उपयोग करते थे, लेकिन उन का प्रचलित और लोक प्रिय नाम 'विहारीजी' ही अधिक प्रसिद्ध हुआ। अपनी साहित्यिक कृतियों के साथ वे 'बनवासी' लिखा करते थे और जैन समाज में अधिकतर 'मास्टरजी' के नाम से पुकारे जाते थे। विहारीजी का कद लम्बा, रंग गेहुँआ, शरीर पुष्ट, सुती हुई नाक, चमकदार आँखें और छाती पर घने बाल थे। उनके ओठों पर मन्द मुस्कान थिरकती रहती थी। किस्तीनुमां काली टोपी, सफेद कुर्त्ता, धोती और पैरों में प्रायः देशी जूते। संक्षेप में यही उन की वेश भूषा थी। पढ़ते समय ऐनक का प्रयोग करने लगे थे। खान-पान, वेश भूषा में मर्यादा का सदैव ध्यान रखते थे। बाजार में या विद्यालय में कभी नगे सिर नहीं आते थे और न कभी किसी चाय की दुकान पर बैठ कर चाय पीते थे।

विहारीजी के पिता पं० कानीरामजी चूरू नगर के निकटवर्ती ग्राम (लगभग ४ मील दक्षिण पूर्व) खासोली के रहने वाले दाधीच ब्राह्मण थे। कानीरामजी अपने भाइयों में सब से छोटे थे, लेकिन उन के परिवार में विद्या का प्रवेश उन्हीं के माध्यम से हुआ। कानीरामजी ने खासोली के निकटवर्ती कसबे रामगढ़ के रूइया विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। सेठ हरनन्दरायजी रूइया के आग्रह पर विद्यालय के आचार्य ने कानीरामजी को सेठजी के साथ बम्बई भेज दिया। बम्बई में सेठो का बड़ा कारोबार था। प० कानीरामजी रूइया परिवार के सम्मानित सदस्य की तरह रहते थे और सेठ जी की हवेली में स्थित ठाकुर बाड़ी की पूजा अर्चा भी करते थे।

उन दिनों बम्बई में श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बड़े जोरों से चल रहा था। इस की स्थापना चूरू के श्री गंगाविष्णु खेमराज बजाज ने सन् १८७१ में की थी और इस में हजारों ग्रंथ उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि शास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, नाटक,काव्य,ख्याल आदि धड़ाधड़

छप रहे थे। हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, मराठी और मारवाड़ी में ग्रंथ छपते थे। पंडित कानीरामजी इस विशाल काय प्रेस में प्रूफ रीडर बन गये। प्रेस में उन्हें अनेकानेक ग्रंथों के अवलोकन का अवसर प्राप्त हुआ। अनेक ग्रंथ तो उन्हें कंठाग्र हो गये। साल में २-३ महीने जब वे अपने गांव आते तो उन ग्रंथों के विविध प्रसंगों को गाया करते, अन्य भाइयों को भी सुनाते।

वि० सं० १९७४ की भादों सुदि ८ को बालक कुञ्जविहारी का प्रादुर्भाव हुआ। वर्षा की झड़ी लगी हुई थी, पंडितजी की झोंपड़ी टपाटप चू रही थी और झोंपडी में आसन्न प्रसवा पंडितानीजी लेटी थीं। प्रतिकूल मौसिम का ध्यान कर के पंडितजी तम्बू लाने के लिए तुरंत ही रामगढ़ सेठों की हवेली में पहुँचे। सारी स्थिति जानकर सेठों ने तत्काल कुछ आदमियों को तम्बू देकर पंडितजी के साथ भेज दिया। लेकिन पंडितजी के पहुँचने तक बालक कुञ्जविहारी का आविर्भाव हो चुका था। कुछ समय पश्चात् रूइया परिवार के एक बाबू स्वयं खासोली आये और उन्होंने पंडितजी से कहा, नवागत बालक के लिए आप एक पक्की हवेली बनवा लीजिये। पंडितजी ने बाबू के आग्रह को स्वीकार कर लिया और उन के लिए खासोली में एक हवेली बन गई। इस के बाद कोई ३-४ साल तक पंडितजी और बम्बई जाते रहे, लेकिन फिर बम्बई जाना बंद कर दिया और गांव में ही रहने लगे।

अब पंडितजी यदा कदा चूरू आते तो बालक कुञ्जविहारी को भी साथ ले आते। अपने माता पिता के एकलौते बेटे थे, अतः खूब लाड प्यार में पलते [illegible] चूरू में सेठ बलदेवदासजी कोलिडेवाला ने काली मैया का एक नवीन म[illegible] बनवाया था। उन दिनों पं० कानीरामजी की बूआ के बेटे पं० हणूतराम मंदिर में पुजारी थे, इस लिए जब पंडितजी चूरू आते तो हणूतरामजी पास भी आ जाते थे। एक दिन सेठजी मंदिर में दर्शन करने के लिए आये [illegible]डितजी से उन का साक्षात्कार हुआ और उसी दिन से कोलिडेवाला परिव[illegible] साथ उन के अटूट सम्बन्ध जुड गये।

सेठ बलदेवदासजी ने मंदिर के सामने ही श्री मद्भगवत विद्यालय की स्था[illegible] की जिसका उद्घाटन कार्तिक शुक्ला ७ सं० १९७७ को हुआ और सर्व प्र[illegible] पं० लक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी अध्यापक नियुक्त हुये। इस के बाद [illegible] मल्लिनाथजी चोमाल और श्री गोकर्णजी व्यास प्रभृति ने भी कुछ काल [illegible] अध्यापन कार्य किया। फिर पं० बालचन्दजी सारस्वत (कुचिलाव), [illegible] नियुक्त हुए। वि० सं० १९८० में पं० कानीरामजी और गुरु श्री हरदेवदास[illegible] गोस्वामी इस विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हुए। गुरुजी ने बतलाया कि [illegible] लगातार ४६ वर्ष तक इस विद्यालय में अध्यापन कार्य किया।

(४७) श्री कुञ्जविहारी स्मृति सुमन

अब बालक कुञ्जविहारी का शिक्षा क्रम भी चालू हुआ। कुछ दिनों तक तो पंडित कानीरामजी नित्य खासोली जाते रहे, लेकिन बाद में सेठों ने मंदिर के निकट ही एक नोहरा उन के रहने के लिए दे दिया। इसके बाद वे अधिकतर यहीं रहने लगे। विहारीजी का अध्ययन चलता रहा। मां बाप के एकलौते बेटे होने के कारण तथा तत्कालीन परंपरा के अनुसार १४ वर्ष की आयु में ही उन का विवाह कर दिया गया। विवाह बिसाऊ के पं० शिवनारायणजी सूंटवाल की पुत्री भगवती देवी के साथ वैशाख सुदि १४ सं० १९८८ को हुआ।

विहारीजी का अध्ययन चलता रहा और एल०एन०बी हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा दे कर उपरोक्त विद्यालय में ही वे पिता के स्थान पर अध्यापन कार्य करने लगे। पं० कानीरामजी ने अब काली मैया के मन्दिर की पूजा अर्चा का भार सम्भाल लिया। वि० सं० १९९५-९६ में चूरू के प्राचीन कालेरा बास में उनका मकान बनकर तैयार हो गया तो वे सपरिवार उस में आ गये।

इसके पश्चात् विहारीजी हिन्दी विद्यापीठ के जन्मदाता स्व० प० रामनारायणजी जोशी के सम्पर्क में आये और सन् १९४२ के लगभग इन्होंने साहित्यरत्न की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। हिन्दी विद्यापीठ को इन्होंने अपनी सेवाएं भी दी। यहीं श्री मुरलीधरजी सारस्वत एम ए., साहित्यरत्न और श्री सत्यनारायणजी गोयनका आदि साहित्यसेवियों के साथ इनके साहित्यिक सम्पर्क बने। इन दिनों चूरू में "साहित्य गोष्ठी" भी अपने उत्कर्ष पर थी और विहारीजी इसके अधिवेशनों में रुचि पूर्वक भाग लेते थे।

सन् १९४४ के करीब एक बार वे पटना गये। वहां उन्होंने राजगढ़ के सेठ सूरजमलजी मोहता की फर्म में कुछ महिने कार्य किया। मोहताजी के यहां बोट बनते थे और सरकार को सप्लाई होते थे। विहारीजी ने पटना का एक रोमांचक संस्मरण सुनाते हुए बतलाया था कि एक दिन एक नव निर्मित बोट को पानी में उतारा जा रहा था। वे अपने कतिपय साथियों के साथ गंगा के किनारे बंधे हुए काठ के एक गट्ठर पर सवार थे, किसी ने बंधन खोल दिया और बंधन के खुलते ही गट्ठर सब को लिये दिये बड़ी तेजी से नदी के प्रवाह में बह चला। उस दिन सब की मृत्यु निश्चित थी, लेकिन ईश्वर की अनुकम्पा से सभी साथी सकुशल बच गये।

पिताजी के विशेष स्नेह और आग्रह के कारण विहारीजी को पटना से आना पड़ा और चूरू आने के बाद पुनः पटना जाना सम्भव नहीं हो सका। इन दिनों चूरू में इन्टर मिडियेट कालेज बनाने के प्रयत्न चल रहे थे। चूरू के शिक्षा प्रेमी सेठ कन्हैयालालजी लोहिया ने कालेज भवन का निर्माण कराना स्वीकार कर लिया था और १८ दिसम्बर १९४३ को सवेरे भूतपूर्व बीकानेर

अनुरोध करता तो कहते, मैं तो हर समय लिखता ही रहता हूं, लेकिन कागज पर उतारना अब मेरे से नहीं होता। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में उन्होंने कुछ उद्बोधक कविताएं लिखी थीं, जिनमें से जो उपलब्ध हो सकीं उन्हे अन्यत्र दिया जा रहा है। यों आवश्यक होने पर वे समय समय पर गद्य या पद्य में लिखते रहते थे, लेकिन उसे एकत्र करके न रखने से वह सारी सामग्री इधर उधर बिखर गई। उसमें से कुछ पूरी, कुछ अधूरी उपलब्ध हो सकी, कुछ गीतिकाएं आदि श्री सोहनलाल जी हीरावत के सौजन्य से प्राप्त हुई। बाद की कविताओं में कुछ तो राष्ट्रीय पर्वों पर कही गई सामयिक कविताएं हैं या जैन धर्म से सम्बन्धित गीतिकाएं आदि।

पद्य की तरह गद्य पर भी विहारीजी का अच्छा अधिकार था। "मलयज की महक" नामक गीतिकाओं के संग्रह में उनके द्वारा लिखी गई भूमिका से कुछ अंश द्रष्टव्य हैं—

"समय की सुनहली रेनी की रगड से सम्राटों के सजीले कीर्तिस्तम्भ, कण कण हो मिट्टी में मिल गये—सम्पदा और सौन्दर्य की खाक हवा में उड़ गई, पर समय समय पर अवतरित हमारे वीतराग, त्यागी तपस्वियों की विचार धारायें, उनकी वाणी अनन्तकाल के लिए अमर है, अदम्य है, क्योंकि उसमें विश्वहित की भावना के बीज सन्निहित हैं। आज भी इस विज्ञान विमोहित विश्व की चटकीली चकाचौंध संत परम्परा की मंजुल मंदाकिनी को सुखा न सकी है।"

"वीर-वंशावली का देदीप्यमान सन्त-सुरत्न, तेरापन्थ का परमाराध्य आचार्य, अणुव्रत आन्दोलन का ओजस्वी प्रवर्तक परम पूज्य श्री तुलसीश्वर अपने संघ सहित आध्यात्मिक आधार पर जन-जीवन को विशुद्ध बनाने में व्यस्त है। इनके विचार समुद्रों पार सुनाई पड़ने लगे हैं।"

"सूने आंगन में अपनी वृद्धा माता के समीप धीर गम्भीर मुद्रा में, पिता ने नम हृदय का स्मरण किया। चार में से तीन मृग तो एक साथ छलांग अपने लक्ष्य को लांघ गये थे, चौथा जरा ठिठका था—... सदम की आग [illegible] हृदयों का सत्यानाश करने वाले युद्धवीरों की क्रूर कहानियों से ऊब कर [illegible] जब इन सच्चे विश्व हितैषियों की जीवनियां लिखेगा तो उनकी पृष्ठों पर संजीवनी शक्तियां जगमगा उठेंगी।"

"आपकी कवि प्रतिभा से प्रसूत भिन्न-भिन्न तर्जों में तनी बुनी, भिन्न भिन्न [illegible] से विभूषित प्रवचन प्रवाह में हार-शृङ्गार में गूंथी मुक्तामणियों सी [illegible] प्रतीत होती है।"

इसी प्रकार संस्मरण और एकांकी लिखने में भी वे कुशल थे। हिन्दी की

तरह राजस्थानी पर भी उनका अच्छा अधिकार था। इस की छटा उन के "बातां ही बातें" नामक लोकप्रिय राजस्थानी कथा संग्रह में देखी जा सकती है जो "नगर-श्री चूरू" से प्रकाशित है। बात कहने का उनका ढंग भी बड़ा प्रभावशाली था। कथा के प्रसङ्गानुकूल-ही नाटकीय ढङ्ग से उनकी भाव भंगिमायें बनती रहती थी, श्रोता को लगता, जैसे वह चल-चित्र देख रहा हो।

सभा सम्मेलनों का संयोजन करने में विहारीजी एक ही थे। छोटी से छोटी गोष्ठी से लगाकर बड़े से बड़े समारोहों का संयोजन करने में वे प्रवीण थे। नये वक्ता को भी वे बेदम नहीं होने देते थे। अपने जिस मनोगत भाव को वक्ता स्वयं स्पष्ट नहीं कर पाता उसे वक्ता के बोल चुकने पर वे बड़ी खूबी से व्यक्त कर देते थे। सांस्कृतिक समारोहों मे कवियों का आवाहन प्रायः नवीन पद बना कर ही किया करते थे और कवि के बोल चुकने पर कवि ने क्या कहा है, कैसा कहा है, इसकी पद बद्ध विवेचना सुना कर अगले कवि को बोलने का निमन्त्रण देते थे। श्रोताओं पर भी उनकी वाणी का पूरा असर रहता और वे शान्तिपूर्वक सारे कार्यक्रम को सुना करते थे। गत १६ अगस्त (अगस्त १९६८) की रात्रि को नगर में तत्कालीन जिलाधीश श्री जी० रामचन्द्र की अध्यक्षता में जो कवि सम्मेलन हुआ था, उसका संयोजन विहारीजी ने ही किया था। विहारीजी के कुशल-संयोजन से वे इतने प्रभावित हुए कि विहारीजी के अचानक दिवंगत हो जाने का उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ और नगर श्री के सभा-भवन में भाव-भीनी शोक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा कि मैंने अनेक सम्मेलन समारोह देखे हैं, लेकिन स्व० विहारीजी जैसा कुशल संयोजक अब तक नहीं देखा।

स्वाध्याय में उनकी गहरी रुचि थी। समाचार-पत्र नित्य नियम से पढ़ते थे, साथ ही कुछ उच्च स्तरीय पत्र-पत्रिकाएं भी। महाप्रयाण के दिन प्रातः अस्पताल जाते समय भी उन्होंने अखबार मंगवाकर पढ़ा था। आधुनिक कवियों में, उन्हें श्री मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद विशेष प्रिय थे तो लेखकों में श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन और श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। श्री बनारसीदासजी का लेख जहां भी देखते, अवश्य पढ़ते और मुझ से भी कहते कि अमुक पत्र में आज चतुर्वेदीजी का लेख छपा है। श्रद्धेय चतुर्वेदीजी के प्रति मेरी भी बड़ी आस्था है। वे उन-भूली बिसरी विभूतियों को प्रकाश में लाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, जिनको यह निगुरी दुनिया भुला चुकी होती है। वस्तुतः उनका तो दीन ही कामिल को इबादत करना है।

भारतीय संस्कृति के प्रति वे बड़े निष्ठावान थे। भारतीय आदर्शों के प्रति

अनुरोध करता तो कहते, मैं तो हर समय लिखता ही रहता हूं, लेकिन कागज पर उतारना अब मेरे से नहीं होता। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में उन्होंने कुछ उद्बोधक कविताएं लिखी थीं, जिनमें से जो उपलब्ध हो सकीं उन्हे अन्यत्र दिया जा रहा है। यों आवश्यक होने पर वे समय समय पर गद्य या पद्य में लिखते रहते थे, लेकिन उसे एकत्र करके न रखने से वह सारी सामग्री इधर उधर बिखर गई। उसमें से कुछ पूरी, कुछ अधूरी उपलब्ध हो सकी, कुछ गीतिकाएं आदि श्री सोहनलाल जी हीरावत के सौजन्य से प्राप्त हुईं। बाद की कविताओं में कुछ तो राष्ट्रीय पर्वों पर कही गई सामयिक कविताएं हैं या जैन धर्म से सम्बन्धित गीतिकाएं आदि।

पद्य की तरह गद्य पर भी बिहारीजी का अच्छा अधिकार था। "मलयज की महक" नामक गीतिकाओं के संग्रह में उनके द्वारा लिखी गई भूमिका के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं—

"समय की सुनहली रेती की रगड से सम्राटों के सजीले कीर्ति कण कण हो मिट्टी में मिल गये—सम्पदा और सौन्दर्य की खाक हवा गई, पर समय समय पर अवतरित हमारे वीतराग, त्यागी तप विचार धारायें, उनकी वाणी अनन्तकाल के लिए अमर है, अतः उसमें विश्वहित की भावना के बीज सन्निहित हैं। आज भी ... हित विश्व की चटकीली चकाचौंध सन्त परम्परा की मंजुल ... न सकी है।"

"वीर-वंशावली का देदीप्यमान सन्त-सुरत्न, ... आचार्य, अणुव्रत आन्दोलन का ओजस्वी प्रवर्तक ... अपने सं[illegible] न आध्यात्मिक आधार पर ज[illegible]

विचार समुद्रों पार सुनाई ...

न में अपनी श्रद्धा मान...

...य का स्मरण किया।

लक्ष्य को लांघ गये थे.

...य हृदयों का सत्यानाश ...

...निहास [illegible] इन सच्चे ...

... संजीवनी ...

"[illegible] कवि...

...गाओं में विभू...

मनोहारी ...

इसी प्रकार ...

श्री द्वारा रचित हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी और संस्कृत की सरस गीतिकाओं का विहारीजी ने संग्रह किया जो "मलयज की महक" नाम से प्रकाशित हुआ। विहारीजी ने ही इसकी विद्वतापूर्ण भूमिका लिखी जिसमें जैन धर्म के प्रति उनके आकर्षण की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है।

इसके पश्चात् वयोवृद्ध मुनि श्री सोहनलालजी (सुराणा–चूरू) की भावपूर्ण गीतिकाओं ने विहारीजी को खूब प्रभावित किया। मुनि श्री की ओजपूर्ण वाणी प्राप्त कर ये गीतिकाएं और भी अधिक प्रभावपूर्ण बन गई थी। विहारीजी ने मुनि श्री के दर्शन और उनकी वाणी का लाभ मुझे भी प्राप्त करवाने की कृपा की। उनके संयोग से मुझे भी जैन साधु-साध्वियों की गीतिकाओं और उनके प्रवचनों से लाभान्वित होने के सुअवसर प्राप्त होते रहे। विहारीजी के उदार सहयोग से ही शतावधानी मुनि श्री महेंद्रकुमारजी 'प्रथम', और अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज जी के दर्शनों व प्रवचनों का लाभ भी मुझे प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री ने जब अणुव्रत आंदोलन का श्रीगणेश किया और स्थान-स्थान पर अणुव्रत समितियों की स्थापना की जाने लगी तो चूरू नगर में 'अणुव्रत समिति' की स्थापना और उसके संचालन में श्री विहारीजी का ही प्रमुख भाग रहा। विहारीजी ने अपने अभिन्न मित्र श्री मंगलचन्दजी सेठिया को प्रेरणा देकर लगभग ६० चित्र बनवाये। इन चित्रों में अणुव्रत आंदोलन के प्रत्येक नियम पर कलात्मक विवेचन देने वाले भाव दृश्य थे। ये चित्र चूरू और कलकत्ता में तैयार करवाये गये। इन चित्रों को तैयार कराने का श्रेय श्री विहारीजी की अनोखी सूझ-बूझ को ही है। तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह पर इन चित्रों को प्रदर्शित किया गया तो इनकी मुक्तकंठ से सराहना की गई। अन्य अवसरों पर भी इन चित्रों को प्रदर्शित किया गया जिससे कि सर्व साधारण इन से प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

चूरू में "महिला अणुव्रत समिति" की स्थापना और उसके संचालन का श्रेय तो विहारीजी को ही है। पर्दे में रहने वाली संभ्रान्त घरानों की महिलाओं को प्रशिक्षण और प्रोत्साहन देकर उन्होंने उन्हें अणुव्रत समिति के मञ्च पर ला कर अपने मनोगत भावों को प्रकट कर सकने योग्य बनाया। महिला अणुव्रत समिति की बालिकाओं में अनेक तरह की प्रतियोगितायें चालू की गईं, जिसके फलस्वरूप मौलिक परिवर्तन हुए, बहिनें आज भाइयों से पीछे नहीं रहेंगी, मानो ऐसी होड लग गई। इस प्रकार समय समय पर विभिन्न आयोजन करके विहारीजी ने अणुव्रत समितियों को सक्रिय बनाये रखा, जिसके फलस्वरूप काफी रचनात्मक कार्य हुआ।

चूरू के अनेक कुलीन परिवारों के साथ विहारीजी के घरेलू सम्पर्क

उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। रामचरित मानस और साकेत के पावन प्रसङ्गों को सुनाते समय वे पुलकित हो उठते थे तो भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के पद गुनगुनाते समय भी आनन्दविभोर हो जाते थे। सूर, मीरा और रसखान के भाव भीने पद गाते समय उनकी आंखें सजल हो जाती थीं तो प्रताप और शिवाजी की शौर्य गाथाएं कहते समय उनके भुजदण्ड फड़क उठते थे।

अस लेगो अणादाग, पाघ लेगो अणनामी।

पद्यांश उनके मुख से अनेक बार सुना था। महात्मा गांधी, सरदार पटेल, श्री जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और श्री लाल बहादुर जैसे मनस्वियों की उनके मन पर अमिट छाप थी। संत विनोबा को वे एक आदर्श पुरुष मानते थे और उनकी कार्य प्रणाली में गहरा विश्वास रखते थे। यों तो वसुधैव कुटम्बकम् की भावना के वे पोषक थे किन्तु भारत के कण कण से उन्हें विशेष प्यार था। गंगा यमुना की पवित्रता और हिमाचल की उच्चता से वे गर्वित थे। राजस्थान के प्रत्येक सिकता कण को वे शौर्य में सना और गरिमा से पूरित देखते थे। इस धरती की गौरव गाथा गाते कभी अघाते न थे।

सभी धर्मों के प्रति उनके मन में समादर की भावना थी किन्तु धर्म के नाम पर चलने वाले ढकोसलों के वे कट्टर विरोधी थे। जीवित समाधि लेने वाले एक ढोंगी साधु के कारनामों का एक बार किस प्रकार पर्दा फाश किया गया था, इसका रोचक विवरण उन्होने मुझे सुनाया था।

पिछले कुछ वर्षों से जैन धर्म (तेरापंथ) की ओर उनका विशेष आकर्षण हो गया था। विहारीजी के अनन्य मित्र श्री मगलचन्दजी सेठिया के सम्पर्क और अनुरोध के कारण उनका जैन सन्तों के मध्य आवागमन प्रारम्भ हुआ। श्री सोहनलालजी हीरावत के संसर्ग से यह आवागमन और अधिक बढ़ा। आचार्य श्री तुलसीगणी के चूरू पधारने पर जब विहारीजी उन के सान्निध्य में आये तो जैन धर्म की ओर उनका आकर्षण तेजी से बढ़ा। आचार्य श्री के विशिष्ट व्यक्तित्व, जैन धर्म के उच्च आदर्श और जैन साधु-साध्वियों के निस्पृही जीवन ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया और वे शीघ्र ही जैन धर्म की गतिविधियों में रम गये। आचार्य श्री भी उनकी कार्य प्रणाली और ठोस लगन से प्रभावित हुए।

विहारीजी अब जैन धर्म से सम्बन्धित सभी स्थानीय गतिविधियों में प्रमुख भाग लेने लगे, बल्कि कहना चाहिये कि नगर में होने वाले जैन धर्म सम्बन्धी सभी कार्यक्रमों के आधार स्तम्भ बन गये। जैन धर्म का कोई भी कार्यक्रम शायद ऐसा न होता था जिसका संयोजन विहारीजी न करें। वि. सं. २०११ में विद्वान जैन मुनि श्री चन्दनमलजी का चातुर्मास चूरू में हुआ। मुनि

श्री द्वारा रचित हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी और संस्कृत की सरस गीतिकाओं का विहारीजी ने संग्रह किया जो "मलयज की महक" नाम से प्रकाशित हुआ। विहारीजी ने ही इसकी विद्वतापूर्ण भूमिका लिखी जिसमें जैन धर्म के प्रति उनके आकर्षण की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है।

इसके पश्चात् वयोवृद्ध मुनि श्री सोहनलालजी (सुराणा-चूरू) की भावपूर्ण गीतिकाओं ने विहारीजी को खूब प्रभावित किया। मुनि श्री की ओजपूर्ण वाणी प्राप्त कर वे गीतिकाएं और भी अधिक प्रभावपूर्ण बन गई थी। विहारीजी ने मुनि श्री के दर्शन और उनकी वाणी का लाभ मुझे भी प्राप्त करवाने की कृपा की। उनके संयोग से मुझे भी जैन साधु-साध्वियों की गीतिकाओं और उनके प्रवचनों से लाभान्वित होने के सुअवसर प्राप्त होते रहे। विहारीजी के उदार सहयोग से ही शतावधानी मुनि श्री महेंद्रकुमारजी 'प्रथम', और अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज जी के दर्शनों व प्रवचनों का लाभ भी मुझे प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री ने जब अणुव्रत आंदोलन का श्रीगणेश किया और स्थान-स्थान पर अणुव्रत समितियों की स्थापना की जाने लगी तो चूरू नगर में 'अणुव्रत समिति' की स्थापना और उसके संचालन में श्री विहारीजी का ही प्रमुख भाग रहा। विहारीजी ने अपने अभिन्न मित्र श्री मगलचन्दजी सेठिया को प्रेरणा देकर लगभग ६० चित्र बनवाये। इन चित्रों में अणुव्रत आंदोलन के प्रत्येक नियम पर कलात्मक विवेचन देने वाले भाव दृश्य थे। ये चित्र चूरू और कलकत्ता में तैयार करवाये गये। इन चित्रों को तैयार कराने का श्रेय श्री विहारीजी की अनोखी सूझ-बूझ को ही है। तेरापथ द्विशताब्दी समारोह पर इन चित्रों को प्रदर्शित किया गया तो इनकी मुक्तकंठ से सराहना की गई। अन्य अवसरों पर भी इन चित्रों को प्रदर्शित किया गया जिससे कि सर्व साधारण इन से प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

चूरू में "महिला अणुव्रत समिति" की स्थापना और उसके सचालन का श्रेय तो विहारीजी को ही है। पर्दे में रहने वाली संभ्रान्त घरानों की महिलाओं को प्रशिक्षण और प्रोत्साहन देकर उन्होंने उन्हें अणुव्रत समिति के मञ्च पर आ कर अपने मनोगत भावों को प्रकट कर सकने योग्य बनाया। महिला अणुव्रत समिति की बालिकाओं में अनेक तरह की प्रतियोगितायें चालू की गई, जिसके फलस्वरूप मौलिक परिवर्तन हुए, बहिनें आज भाइयों से पीछे नहीं रहेंगी, मानो ऐसी होड लग गई। इस प्रकार समय समय पर विभिन्न आयोजन करके विहारीजी ने अणुव्रत समितियों को सक्रिय बनाये रक्खा, जिसके फलस्वरूप काफी रचनात्मक कार्य हुआ।

चूरू के अनेक कुलीन परिवारों के साथ विहारीजी के घरेलू सम्पर्क बन

गये थे और उन घरों में उन का निर्बाध आवागमन होता था। सेठ शोभारामजी कोलिड़ावाला के प्रति उन की पूज्य भावना थी तो बैजनाथजी दुर्गादत्तजी उनके भ्रातृतुल्य थे, इसी प्रकार शोभारामजी की पुत्रियां गीता, सीता, चन्दा आदि भी विहारीजी को सगे भाई की तरह ही मानती थीं। भीमसरिया परिवार के साथ भी उनके आत्मीय सम्बन्ध थे। लड्डूरामजी भीमसरिया के असामयिक निधन से उन्हें बड़ी वेदना हुई थी। लड्डूरामजी बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे और यद्यपि मेरा उनसे विशेष परिचय नहीं था, लेकिन उनकी सज्जनता की छाप मेरे मन पर थी और इसलिए यह दुःखद प्रसङ्ग याद आने पर मेरे मन में भी पीड़ा का अनुभव होता था। उनके निधन के समय उनके बच्चे बहुत छोटे छोटे ही थे जिन को विहारीजी ने पूर्ण वात्सल्य भाव से शिक्षा दी और ईश्वर की अनुकम्पा से आज वे उत्तम नागरिक हैं। श्री आसारामजी बियाणी, महावीरप्रसादजी सरावगी, मालचन्दजी शर्मा आदि उनके प्रिय सहपाठी रह चुके हैं। श्री मंगलचन्दजी सेठिया उनके परमप्रिय मित्र थे। जब मंगलचन्दजी चूरू होते तब शायद एक दिन भी ऐसा नहीं होता था, जिस दिन विहारीजी उनसे न मिलें। लगभग २५ वर्ष पूर्व श्री सोहनलालजी हीरावत से उनका सम्पर्क जुड़ा और उसके बाद यह सम्पर्क घनिष्ठतर होता गया। श्री विहारीजी का उनके घर पहुँचना नियमित सा हो गया था। श्री मोहरसिंहजी राठौड़ से भी जब से भाईचारे के सम्पर्क बने तो अन्त तक वैसे ही बने रहे।

विश्वासपात्र मित्र होने के साथ साथ विहारीजी एक अच्छे पड़ोसी भी थे। यों तो पूरे मोहल्ले का स्नेह उन्हें प्राप्त था, लेकिन श्री मोतीलालजी स्वर्णकार उनके घनिष्टतम पड़ोसी थे। स्व० श्री बद्रीप्रसादजी आचार्य (ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम) के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी और आचार्य जी के मन मंदिर में भी उनके प्रति पूर्ण वात्सल्य भाव था। स्वामी श्री कान्हदासजी के प्रति भी विहारीजी की बड़ी श्रद्धा थी। यह श्रद्धा सम्भवतः उन की निष्काम जनसेवा [illegible] कारण ही अधिक रही हो। जैन धर्म की गतिविधियों में विशेष भाग लेते [illegible] कारण अनेक श्रद्धालु जैन श्रावकों, श्री हनुमानमलजी सुराना, [illegible] [illegible] बोथिया और [illegible]मलजी कोठारी आदि से उनके सम्पर्क जुड़ गये। नगर के अनेक उच्चतम अधिकारियों के साथ भी विहारीजी के घनिष्ठ [illegible] थे। यों विहारीजी के स्नेहीजनों की सूचि बहुत लम्बी है और उन [illegible] नामों का उल्लेख यहाँ हो सकना सम्भव नहीं है।

जहां तक मेरा अपना सम्बन्ध है श्रद्धेय श्री विहारीजी से मेरी घनिष्ठता वि० सं० २०१३ से ही बढी थी। यद्यपि मेरे स्व० पिताजी के साथ यदा-कदा उन की साहित्यिक चर्चा होती थी और मेरे अग्रज श्री सुबोधकुमारजी अग्रवाल समानधर्मी (कवि) होने के नाते पहले से ही उनके विशेष सम्पर्क में थे, लेकिन विहारीजी के साथ मेरी घनिष्ठता उपरोक्त समय से ही बढी और फिर बढती ही चली गई। श्री विहारीजी की मुझ पर विशेष कृपा थी और वे मेरे पास घन्टों बैठा करते थे, अनेक विषयों पर चर्चा होती। जब कभी श्री चन्द्रशेखर-जी व्यास भी आ जाते तो यह गोष्ठी और अधिक लम्बी और सरस बन जाती थी। जहां तक मैं समझता हूं, श्री विहारीजी मुझ से अपनी कोई बात छुपा कर नहीं रखते थे। मैं उनका अन्तरंग बन गया था, कभी कभी मुझसे कहा करते, कम से कम एक स्थान तो ऐसा होना चाहिए कि जहां अपने मन की बात कह सकूं। अपने सम्बन्ध में यहां अधिक कुछ न लिखकर इतना ही लिखना चाहूंगा कि मैं उनका प्रवल विश्वास और प्रगाढ स्नेह अर्जन कर सका, यह मेरे लिए गौरव की बात है।

कार्तिक कृष्णा ४ सं० १९९२ को उनके ज्येष्ठ पुत्र बनवारीलाल, चैत्र कृष्णा ११ सं० १९९४ को दूसरे लडके दामोदरप्रसाद और मार्गशीर्ष शुक्ला ८, सं० २००३ को कनिष्ठ पुत्र श्यामसुन्दर का जन्म हुआ। इसी प्रकार उन्हें तीन कन्याओं की प्राप्ति हुई, शान्ति, विमला, सुगणा।

विहारीजी की स्नेहमयी माता का स्वर्गवास वि० सं० २००१ के लगभग हुआ और पितृ विछोह सं० २००७ ज्येष्ठ वदि ६ को हो गया। लेकिन इन सब से जबरदस्त आघात उन्हें वि० स० २०५२ ज्येष्ठ वदि ६ को लगा जब उनका बडा लड़का बनवारीलाल लम्बी बीमारी के बाद सारे परिवार को शोक-सागर में डूबो कर चला गया। यद्यपि विहारीजी इस मर्मान्तक घाव को छुपाये रखते थे, लेकिन यह तो रिसता ही रहता था। इतना बचाव अवश्य हो गया था कि रुग्ण रहने के कारण उसका विवाह नहीं किया गया था।

शेष सारे बच्चों की शादियां विहारीजी की विद्यमानता में ही हो गई थी। दामोदरप्रसाद का विवाह महनसर के प० रामकुमारजी जाजोदिया की बेटी सावित्री के साथ और श्यामसुन्दर का विवाह चिड़ावा के पं० बजरगलालजी कुदाल की बेटी विजयलक्ष्मी के साथ हुआ। बडी लड़की शांति का विवाह श्री भंवरलालजी कुदाल सरदारशहर, मंझली लडकी विमला का विवाह लक्ष्मणगढ के श्री वेणीप्रसादजी रणवा और छोटी लडकी सुगणा का विवाह श्रीचतुर्भुजजी रतवा (सलामपुर) के साथ हुआ उपरोक्त सन्तानों के अतिरिक्त विहारीजी

अपने पीछे पत्नी, एक पौत्र चि० रमेश और तीन पौत्रियां उषा, सुमन और सरोज छोड़ गये।

मधुमेह की बीमारी उन्हें विरासत में मिली थी जो उनके जीवन के अन्तिम वर्षों में कभी कभी उग्र हो उठती थी। इसी मध्य चूरू के बी.डी. बागला अस्पताल में डॉ० शंकरलालजी का आगमन हुआ और शीघ्र ही विहारी जी के साथ उनकी घनिष्ठता हो गई। उन्होंने विहारीजी को नीरोग बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किये, अनेक बार बिना बुलाये ही उन्हें संभालने घर पहुंच जाते थे। इसके पश्चात् डा० आर. एस. सिंघवी साहब ने उनका इलाज करना शुरू किया। निधन से कुछ समय पूर्व विहारीजी का स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर गया था, वजन भी बढ़ा था। लेकिन १८ सितम्बर १९६८ को पढ़ाते पढ़ाते ही उन्हें दिल का दौरा पड़ा। थोड़ी देर बाद कुछ स्वस्थ हुए तो घर पहुंचाये गये। उस रात को तकलीफ रही, अगले दिन कुछ ठीक रहे, लेकिन रात को फिर तकलीफ बढ़ गई। सवेरे डॉ० सिंघवी घर पर आये तो विहारीजी बिल्कुल भले चगे लगते थे। डॉक्टर साहब ने कहा कि वैसे तो कोई खास बात नहीं है, लेकिन यदि ये अस्पताल चले चलें तो वहां मैं इन्हें सम्भालता रहूंगा। दामोदर के आग्रह पर विहारीजी ने स्वीकृति दे दी और दामोदर जीप ले आया। इस मध्य विहारीजी ने हजामत बनवाई और अखबार मंगाकर पढ़ा। जीप आ गई तो कुर्त्ता पहना, सिर पर टोपी रखी, एक नजर घर पर डाली और जीप उन्हें लेकर अस्पताल की ओर चल पडी। लेकिन वहां पहुंचने के दो-तीन घन्टे पश्चात् उन्हें फिर दिल का दौरा पड़ा, और उनकी आत्मा कलेवर को छोड़कर स्वर्ग सिधार गई।

इस अप्रिय समाचार से नगर में शोक की लहर व्याप्त हो गई। बागला विद्यालय के सभी शिक्षक, छात्र और कर्मचारी विषाद में डूब गये। विहारीजी के अन्तिम दर्शन करने और उनकी शव यात्रा में शामिल होने के लिए झुंड के झुंड विद्यार्थी, शिक्षक, मित्र, सम्बन्धी, पडोसी और परिचित बड़ी संख्या में उनके घर पहुंचे। सभी शोक विह्वल थे, सभी की आंखें अश्रुपूरित थीं, लेकिन [illegible] के विधान के आगे किसी का वश नहीं चलता। अपार जन-समूह के साथ [illegible]यात्रा चली और विहारीजी की पार्थिव देह अग्नि-देव को समर्पित कर दी [illegible]

शव-यात्रा से लौटते लौटते उनके स्नेहीजनों ने उनकी स्मृति को स्थायी [illegible]ने हेतु एक स्मारक-निर्माण की योजना बना डाली, जिसके फलस्वरूप [illegible] भवन के पश्चिमी पार्श्व पर "कुञ्जविहारी ज्ञान-कक्ष" का निर्माण [illegible] जो युगों युगों तक विद्यार्थियों को ज्ञान का प्रकाश देता रहेगा।

नगर-श्री के सभा-भवन में २२ सितम्बर को माननीय जिलाधीश महोदय की उपस्थिति में उनके स्नेहीजनों ने उन्हें भाव-भीनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करते हुए परमात्मा से स्वर्गीय आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की।

साथ ही श्री "कुञ्जविहारी स्मृति ग्रंथ-माला" चालु करने का निश्चय किया गया जिसके अंतर्गत प्रथम पुष्प के रूप में "बातां ही बातें" नाम से उन का राजस्थानी कथा संग्रह प्रकाशित किया गया, जो बड़ा लोकप्रिय हुआ। उसी ग्रन्थ-माला के अन्तर्गत दूसरा पुष्प "कुञ्जविहारी स्मृति सुमन" का प्रकाशन हुआ जो आपके हाथों में है।

नगर-श्री, चूरू
१८/७/६६

—गोविन्द अग्रवाल

गोदी में मुझे
माँ ! तेरे उन प्रिय

भोली माँ !!
सकुचाते

भूलो मेरे
भूलो माँ,

कहना मत माँ
उनको फिर

जिनका
जिनके

वे भक्त
कहते श्री हरि

बस, चाह यही
बापू का हाथ

स्नेह मूर्ति माँ

जिन हाथों से माँ, मल वाले
चिथड़ों को मल मल धोती थी,
परवाह न बदबू की किञ्चित,
धोती मन में खुश होती थी।

जिन हाथों पर हलरा हलरा,
बोबों से दूध पिलाती थी,
मीठी मीठी दे दे थपकी
आंचल में ढांक सुलाती थी।

जिन हाथों की उंगली से माँ,
चन्दा मामा दिखलाया था,
जिन हाथों की अंगुली के बल,
आंगन में चलना आया था।

गोदी में मुझे बिठाने को, अब भी कितने लालायित हैं,
माँ! तेरे उन प्रिय हाथों में, ये सादर कुसुम समर्पित हैं।

भोली माँ !! तेरे भोले की, इतनी सी नेक कमाई है,
सकुचाते सकुचाते से माँ चरणों में आज चढ़ाई है।

भूलो मेरे अल्हड़पन को, भूलो मेरी नादानी को,
भूलो माँ, अपने जीवन की, करुणा से भरी कहानी को।

कहना मत माँ तुम बापू से, बातें इन तुतली तानों की,
उनको फिर अर्पण कर दूंगा, 'माला मेरे अरमानों की'।

जिनका अनुराग भरा, प्यारा, पल पल में हृदय पिघलता है,
जिनके मुसकाते से मुख से, 'प्रिय बेटा' शब्द निकलता है।

वे भक्त मुरारी माधव के, ब्रज के गौरव को गाते हैं।
कहते श्री हरि की पुण्य कथा, कितने गद् गद हो जाते हैं।

बस, चाह यही माँ, तेरी हम, गोदी में बैठ विनोद करें,
बापू का हाथ रहे सिर पर, जीवन में मंगल मोद भरें।

माँ मरुधरा
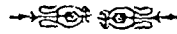
जिसके पर्वद्दल शोभित हैं, दुर्गों के दिव्य किरीटों से ।
जिसकी चट्टानें चर्चित हैं, शोणित के पावन छींटों से ॥

जिसके मस्तक की मांग सुघड़, आडोवळ आड़ी लीक पड़ा ।
स्वातंत्र्य समर का परिचायक, कुंभा का कीर्ति स्तंभ खड़ा ॥

जिसमें गर्जन करता चम्बल, चिकनाता भूधर भालों को ।
यश गाता वीर वसुन्धर का, लहराता लाल दुशालों को ॥

उत्तर में उजले धोरों का, कुछ लम्बा सा भू-भाग पड़ा ।
लगता है कितना सौम्य सुघड़, मरु का यह गोरा सा मुखड़ा ॥

जिसके थल थल पर देवलियां, वन वन झूझार झमकते हैं ।
जिस के कण कण में जौहर के, चिनगारे अभी चमकते हैं ॥

जिन के अश्वों की वज्र टाप, कर भग्न हृदय पाषाणों के ।
अर्बुद पर अंकित करती थी, विक्रम रण बंके राणों के ॥

भटका करती भूखी प्यासी, चण्डी मेवाड़ी माटी में ।
नाची थी खाली खप्पर ले, राणा की हल्दी घाटी में ॥

तीरों पर तन तोला करते, थे भील जहां काले काले ।
जिन के साकों की अमर कथा, गाते अब भी निर्झर नाले ॥

जिस में हर जगह हजारों ही हम्मीर हठीले सोते हैं ।
जिन को करणी कर याद वचन, अब भी कब्बर में रोते हैं ॥

जिस में जन्मे बप्पा रावल, क्षत्रिय नृपों के मुकट मणी ।
जिस में सांगा से समर धीर, कांचन जैसे तलवार धणी ॥

जिस ने जन्मे थे बीका और अम्मर से राज कुमारों को।
शाही दरबारों के खंभे, रोते जिनकी तलवारों को ॥

जिस के ढ़लमलते धोरों में, 'गोरा' गज हर्षा करते थे।
जिस की पीली पीली रज पर 'बादल' से वर्षा करते थे ॥

जिस के पृथ्वी के लम्बे भुज, खाण्डों के खेल दिखाते थे।
उस के ही स्वर इस मरुधर को सच्चा संगीत सुनाते थे ॥

जिस के बेटे व बेटी ने, राखी की रेख बढाई थी।
अनजान बहिन के भाई बन, शीशों की बलि चढाई थी ॥

जब बाँध कमर में बच्चों को, माँ बहिनें चढ़ी चिताओं पर।
जौहर ज्वाला से भी दुगनी, थी आभा पुत्र पिताओं पर ॥

जिस में कृष्णा कोड़मदे सी, घर घर पद्मावत पलती थीं।
अवसर पर निर्भय शेरनियां, तलवारें तान निकलती थीं ॥

जिस के रण थल में रमती थी, दुर्गावत दुर्जय वीरा सी।
महलों में नाची मोहन की, वह मुक्त कुंतला मीरा थी ॥

आकर गिरधर गोपाल यहां, मुरली का स्वर साधा करते।
अपनी मतवाली मीरा के, पग में घुंघरू बांधा करते।

जिस की पन्ना ने पत्थर बन, धायों का धर्म निभाया था।
पर पूत बचाने के बदले अपना नन्हा कटवाया था ॥

अस्मत आजादी की खातिर, शूरों सतियों ने क्या न किया ?
रण चंडी ने जब भी मांगा, रणपुत्रों ने सर्वस्व दिया ॥

जिसके दुरसा व मिश्रण की जिह्वा से शोले झड़ते थे।
जिन की वाणी का गर्जन सुन मुरदे तलवार पकड़ते थे ॥

पीथल की रसवन्ती बेलि, हाडी की अनुपम सहनानी।
भामा की थैली से उमड़ा, चांदी की गंगा का पानी ॥

रक्त ध्वज फहराने लगता, शूरों में शौर्य सुलग जाता।
म्यानों में खड्ग खनक उठते, अलसाया जीवन जग जाता ॥

जिस के बूढे राठोड़ों में अब भी वह रक्त उबलता है।
रणसींगे सुन कर शेरों का सीना बल खाने लगता है ॥

जिस में परमेश्वर आप स्वयं ज्ञानी कपिलेश्वर तपते हैं।
जिस में माँ करणी के मठ के सोने के कलश चमकते हैं ॥

जिस में जोधाणा जयपुर है, मेवाड़ अजय महाराणा का
कोटा बूंदी अजमेर तथा गढ गूंज रहा बीकाणा का ॥

जिस में पीछोला राज समंद अनगिनती झीलों की झांकी।
आबू के मन्दिर महलों की महिमा बोलो किसने आंकी ?

मट काचर बोर मतीरे हैं, जिस की मिट्टी लासानी में।
लाखों मन मोती निपज रहे, श्री गंग नहर के पानी में ॥

शक्ति भक्ति साहित्य तथा, वाणिज्य कला में बढकर है।
शूरों सतियों की दिव्य धरा, अनुपम यह मेरा मरुधर है ॥

जिसके वैभव की वीर कथा, नर रत्न 'नरोत्तम' गाते हैं।
जिन साकों की स्मृतियों से 'हारीत' हरे हो जाते हैं ॥

उस वीर वसुन्धर मरुधर का मैं भी पगला सा प्रानी हूं।
गाता हूं गीत गये दिन के मैं भी तो राजस्थानी हूं।

राणा का विक्रम बोल उठा

उस जीवन की वह सन्धया थी,
सूरज ढलता सा जाता था।
पच्छिम की पीली आभा पर,
काला तम चढ़ता आता था॥

नीले विषाद से भरे हुए,
बादल जुड़ते से आते थे।
देखा था दुखी विहंगम दल,
रो रो कर व्यथा सुनाते थे॥

राणाजी निकट उदयपुर के, सोये हैं एक अटारी में।
आंखें उलझीं हैं एक तरफ, खूंटी पर टंगी कटारी में॥

जिसको भुज दण्डों पर धर कर, नित खून पिला कर पाला था।
इक ओर खड़ा खूंखार यही कोने में भीषण भाला था॥

राणा की स्मृतियां जागीं, रंगीन पुराने परदों में।
अपने को पाया आज पुनः, मरुधर के मानी मरदों में॥

मानो हर हर का विजय गीत, फिर गूंज गया मैदानों में।
मेवाड़ी धरती धूज उठी, तलवारें तड़पीं म्यानों में॥

राणा का अमर अश्व 'चेतक', जंजीर चबाये जाता था।
मानो लोहे के चने चबा, नस नस में जोश जगाता था॥

भाला मन में उठ भलक उठा, कवचों की कड़ियां झमक उठीं।
बोलीं हजार वीर, राणा की आंखें चमक उठीं॥...

बोले-बप्पा के वंशज हम, चितौड़ चिता के चिनगारे ।
इस खल मुगली खाण्डव वन को, हम हैं अर्जुन के अंगारे ॥

हम घुमड़ घुमड़ कर बरसेंगें, हम चमक चमक कर चटकेंगे ।
आओ मुट्ठी में बिजली भर, म्लेच्छों के ऊपर पटकेंगे ॥

फरकी मेवाड़ी लाल धजा, सब ने फिर जय जय कार किया ।
माँ ने आशीषें बरसाईं, सब सतियों ने शृंगार किया ॥

वीरों ने अपनी बहनों से, शुभ रक्षा बन्धन बंधवाये ।
बहुओं ने भर भर कर आंखें, फिर गीत विदाई के गाये ॥

उद्देश्य सुनाया राणा ने, स्वाधीन मेरा मेवाड़ रहे ।
यह लाज धजा, माँ का मन्दिर, अर्बुद का अरुण पहाड़ रहे ॥

चारण विरुदावलियां गाओ, दुर्दम उत्साह बढा दो तुम ।
मारू ! मूँछों में बल भर दो, रणसींगे ! रंग चढ़ादो तुम ॥

फुंकारें करती क्रोध भरी, नागिनियां नालों से निकलीं ।
मानो मतवालों की टोली, हल्दीघाटी की तरफ चलीं ॥

सागर सा उफना आता था, बीहड़ वन में भारी दव सा ।
पग पग पर चाव चढ़ा मानो, मरना भी एक महोत्सव था ॥

देखी राणा ने आज वही, घोड़ों से घाटी पटी हुई ।
देखी राणा ने आज वही, अनगिनती सेना डटी हुई ॥

देखा सुग्रीव सहोदर को, देखी उसकी शैतानी को ।
देखा अम्बारी में बैठा, उस मानसिंह अभिमानी को ॥

फिर तो तन तन में आग लगी, नस नस ने बदला बोल दिया ।
उड़ते चेतक को एड़ लगा, भाला मुट्ठी में तोल लिया ॥

किसको प्राणों से प्रेम न था, जो इस ज्वाला में झोंक सके ।
किसकी हिम्मत होती इतनी, जो कष्ट काल को रोक सके ॥

ओम मान! कृतघ्नी मान!! आज, छिपनेमें कुशल तुम्हारी है ।
छिपजा कायर!! राणा प्रताप, खांडे का खरा खिलाड़ी है ॥

योद्धा है पक्के प्रण वाला, यह असली राजस्थानी है।
इसके रों रों में देश प्रेम, व स्वाभिमान का पानी है॥

हटजा हाथी को दूर हांक, रेशम के लच्छे पकड़ यहां।
जा चाट-चरण दिल्लीश्वर के, लाला के आगे अकड़ यहां॥

यहां तो भाले भलका करते, तलवारें छपका करती हैं।
मस्तक से लाल लाल बूंदें, मणियां सी टपका करती हैं॥

शोणित की रोली घोल यहां, वीरों की होती होली है।
खेलेगा फाग वही जिसने, जीवन से मृत्यु तोली है॥

अच्छा आंखों से देख जरा, अकबर को क्या सुनावेगा।
डर मत तेरे काले मुंह पर, शायद ही शस्त्र उठावेगा॥

पर आंखें अम्बारी पर थीं, भाला मानूं की छाती पर।
तन का बल भर कर मुट्ठी में, बरसावेगा कुलघाती पर॥

चेतक भी चतुर खिलाड़ी था, कितने खेतों में खेला था।
राणा के तनिक इशारे पर, अब दल में बढा अकेला था॥

इस तरफ बना दी सेना को, लोहित भीलों के लठ्ठों ने।
उन श्याम शिलाओं को शोणित में, परिणित कर दी पठ्ठों ने॥

उस तरफ उछलता वीर अश्व, चेतक आंधी सा छूट पड़ा।
हाथी पर दोनों टाप टिकीं, भाला बिजली सा टूट पड़ा॥

रवि का रथ थमा, छिपी जमुना, गंगा की गोदी में डर कर।
सागर पल भर को स्तब्ध हुआ, प्रलयंकारी भय से भर कर॥

दिग्गज कानों से नयन मूंद, दांतों से धरा पकड़ करके।
पांवों पर ओर जमाते हैं, सूंडों से सूंड जकड़ करके॥

सर्पेन्द्र सिमट कर बैठ गया, जिन्हा की लप लप बंद हुई।
मद छूटा मंद पवन में मिल, सुर मण्डल तक को गन्ध गई॥

ब्रह्मा ने झट पट कमल पकड़, माला से मस्तक
जम धरो झपाटे से, यह धरा कहीं न

जितनी जल्दी से पवन पूत, पर्वत ले उड़कर आया था ।
जितनी जल्दी जगदीश्वर ने, सागर में चक्र चलाया था ॥

झपटे, क्षण भी न लगी, लेकिन, राणा किंचित से चूक गये ।
मानू ओंधे मुँह कूद गया, अम्बारी के दो टूक हुए ॥

सोये थे, झिझके, करवट ली, माथे पर भरा पसीना है ।
मुंह से बरबस ही निकल गया यह भी क्या कोई जीना है?

मैं हार चला तुम जीत गये, ओ ! मान ! मुग्ध हो देख मुझे ।
पर, इच्छा थी चेतक पर चढ़, कुछ खेल दिखाता आज तुझे॥

मेरा यह मान ! मरण साथी, चुप चाप खड़ा है कोने में ।
दोधारी लाल कटारी यह, दिनरात बिताती रोने में ॥

चन्द्रावत बूढ़े सेनानी ! कर स्मरण तेरे उपकारों को ।
नत मस्तक करता नमस्कार, माँ के प्यारे झूझारों को ॥

भामा भैया ! मेवाड़पूत !! हे त्याग वीर !! तुम भी आओ ।
माँ के हित बने भिखारी की, ओ चारण! वीर कथा गाओ!!

भामा ने चांदी बरसाई । मैंने भी लोहा बरसाया ।
यह तो माँ, तुझ से उऋण हुआ, पर मैं प्रताप क्या कर पाया??

धिक्कार सभी साथी कटवा, घायल हो घर में लेटा हूं ।
है शर्म मुझे हे सरदारो, मैं भी उस माँ का बेटा हूं ॥

मुझ को क्या कहती है देखो, वह देव धरा उन राणों की ।
जिसकी रक्षा को पत्ता ने, आहुतियां दी थी प्राणों की ॥

मैं देख रहा हूं आंखों से, महलों में म्लेच्छ विचरते हैं ।
माँ की छाती पर खड़े आज लोहे के दाने दलते हैं ॥

है धूल धूल इस बेटे को, जो देखे कर्म कमीने का ।
फटजा फटजा मैं मर जाऊं, ओ घाव ! कृतघ्नी सीने का ॥

इच्छा है शय्या छोड़ अगर, दो चार कदम भी चल पाऊं ।
चित्तौड़ चिता की आग ढूंढ, जननी के आगे जल जाऊं ॥

बेबसी निराशा से मन्थित, वह वीर विकलता सह न सका ।
आवेश बढ़ा वह गद्‌गद था, जो मन में थी वह कह न सका ॥

रोमावलियों में तनिक सिहर, झलकाए रंग जवानी के ।
आरक्त नेत्र कुछ और खुले, भर गये व्यथा के पानी से ॥

देखा महाराणा ने मुड़ कर, सहमे से सरदार खड़े ।
देखा इस तरफ व्यथा विव्हल, अम्मर युवराज कुमार खड़े ॥

दो नेत्र मिले दो नेत्रों से, चारों मिलते ही चमक उठे ।
ढलते सूरज, उगते रवि से, उज्जवल मुख मंडल दमक उठे॥

उन दो नेत्रों का खून उबल, उन दो नेत्रों में खौल उठा ।
महाराणा का विक्रम मानो, अम्मर के मुख से बोल उठा ॥

—: जय राणा :—

विडम्बना

थी देवों की सी दिव्य धरा, जननी थी वीर जवानों की।
उन लाल दिनों में दिल्ली यह, पटरानी थी चौहानों की॥

इसका सौभाग्य-सुधाकर वह, पीथल बांके भुज वाला था।
जिसने रजपूती के रंग को, खांडों से खींच निकाला था॥

जिसके शूरों सामन्तों में, मरने का मोद उबलता था।
जिसका कैमास अकेला ही, कर्नाटक देश कुचलता था॥

जिनके चम्पत व चूंडा की, तलवारें तनिक निकलती थीं।
मुर्दों के ढेर लगाती थी, शोणित की सरिता चलती थी॥

जिसका दरबार दमकता था, सोने के उन्नत आसन से।
जिस पर तपते थे पृथ्वीराज, तेजस्वी तरुण हुताशन से॥

जिसके सम्मुख हजारों ही, सरदार सलामी करते थे।
उसकी नस नस में बरदाई, कवि चन्द वीरता भरते थे॥

घावों के दो चिन्ह न थे, उसकी मर्दानी छाती थी।
मजबूत शिला सी, कविता सुन, गज भर चौड़ी हो जाती थी॥

मोटे मांसल दोनों कन्धे, बांहें घुटनों तक आती थीं।
रतनारे नेत्रों के नीचे, तब मूंछ मरोड़े खाती थी॥

जिसके झलमलते महलों में, नव रूप महकता रहता था।
पीथल की उन परियों का दल, दिन रात चहकता रहता था॥

मोती से महलों की पंक्ति, सुर पुर से क्या कुछ कमती थी ?
हर आंगन में सुरबाला सी रजपूत रमणियाँ रमती थीं॥

पेशावर से पद्मावत था, पीथल की सेज बिछाती थी।
सिंहल, पूगल कर्नाटक की, पद्मिनियां पांव दबाती थीं।

दो-एक नहीं, दस बीस, नहीं, ऐसी बत्तीस बिजलियां थीं।
सरला थी, सहज रसीली थी, वे कल्पलता की कलियां थीं॥

वे वीर व्रता थी, धीर व्रता, वे ओज भरी क्षत्राणी थीं।
वे वीर प्रसविनी वनिता थी, वे सब तलवार धिराणी थीं॥

वे रिम झिम करती बहुएं थी, वे विरुदावलियां गाती थी।
तलवार कमर में कसती थीं, प्रीतम को स्वयं सजाती थीं॥

उस रंग रंगीले जोवन में, तब कैसी जोर जवानी थी।
अपने उन वीर सपूतों पर उस दिन दिल्ली दीवानी थी॥

दीवानी थी लासानी थी प्यारे पीथल की रानी थी।
सोती तलवारों की छाया कैसी मीठी मस्तानी थी॥

मस्तानी में नादानी में चिनगारी चुप से फूट पड़ी।
धागे में बंधी लटकती थी, तलवार अचानक टूट पड़ी॥

जिस रोज सुन्दरी संयुक्ता बिजली बन घर में आई थी।
उस रोज मुहम्मद गोरी ने बांटी वहाँ विजय बधाई थी॥

संयुक्ता सरला हरिणी थी, हँसती तो फूल बरसते थे।
उसकी चपलासी चितवन को कितने युवराज तरसते थे॥

पृथ्वी ने उसका नाम सुना या प्रणय पुराना जाग गया।
चुप चाप कहीं से आ पहुँचा, संयुक्ता को ले भाग गया॥

माला के मंजुल मुक्ता ये सीपी की नाश निशानी है ।
सैरन्ध्री की सुन्दरता ही कौरव की करुण कहानी है ॥

जो द्वेष घोर जयचंद में था उसने ज्वाला उपजाई थी ।
दिल्ली में आग लगाने वह संयुक्ता बन कर आई थी ॥

भाई जीवन भर नहीं मिले, तलवार मिलावेंगी उनको ।
मरने से पहले गरम गरम वे खून पिलावेंगी उनको ॥

गौरी !! आजा अब तूने भी बदले का मौका पाया है ।
ओ! घर की फूट!! नाच नंगी अवनाश निकट चल आया है ॥

यह कमल कुसुम यों हँसा करें मेंढक दल कब सह सकता है ।
अन्धड़ के आगे पका आम न झड़े कहां रह सकता है ।

धोखा था धरती पलट गई पत्थर ने पहिया पकड़ लिया ।
मौके पर यवनों ने आकर बब्बर को जबरन जकड़ लिया ॥

उजड़े घर की, इस दुर्दिन की हा! कितनी करुण कहानी थी ।
पर,वीर प्रवर पर भीम व्यथा की किंचित् नहीं निशानी थी ॥

देखा दुनियां ने भली तरह वे भीष्म बने गंभीर रहे ।
है धन्य हृदय की शक्ति को इस दुख में ध्रुव से धीर रहे ॥

दो लाल शलाकाएं आईं – दो अंगारे भी चमक उठे ।
इस तरफ इशारा तनिक हुआ उस तरफ हथकड़े झमक उठे ॥

पलक छनन का शब्द हुआ उस पलक विजलियां कड़क गईं ।
को बसी हुई दुनियां दो क्षण भर में ही तड़क गई ॥

बिम्ब उतर कर आया था वह पुनः अमर वैकुण्ठ गया ।
। वैभव भरा भवन में था दुर्दैव लुटेरा लूट गया ॥

जिसकी ज्योति से जीते थे वह हीरा कर से छूट गया ।
जो चांद गगन में हँसता था उस रोज अचानक टूट गया ॥

पल भर में कितना परिवर्तन;; कहने का मतलब मेरा है ।
शेरों के बीहड़ जंगल में दुर्बल गीदड़ का डेरा है ॥

नियति की निर्दय लीला की यह क्यों मन चाही मस्ती है ??
पाषाणी मानव पीपल की केवल इतनी सी हस्ती है ???

दुर्दिन के एक झपाटे में दंगल सम्राटी शूरों का ।
यह दिल्ली बन कर महक उठी मय खाना हरमी हूरों का ॥

यह शयनालय की सुन्दरि हो पुतली बन नाज नजाकत की ।
मधु पी कर भोली भूल गई कीमत मर्दानी ताकत की ॥

यह कलह फूट का फर्सा ले जब जब हुँकारें भरती है ।
जगल जलने लग जाता है नगरों को निर्जन करती है ॥

यवनों की माया फैली थी वह भी क्षण भर में क्षीण हुई ।
लचकीली रूप भरी दिल्ली आँखों के आगे दीन हुई ॥

अफसोस नहीं उस रोज हमारा आर्यावर्त का ताज गया ।
दिल्लीश्वर अंतिम बादशाह राजेश्वर पृथ्वी राज गया ॥

परवाह नहीं रजपूतनियाँ अपनी इज्जत के लिए लड़ीं ।
कुछ शोक नहीं है आज हमें वे जो जौहर में कूद पड़ीं ॥

गंगा की बहती धारा में कितने तृण बहते जाते हैं ।
नक्षत्र हजारों गिरते हैं किस की नजरों में आते हैं ॥

पर चन्दा की ज्यों चमक चमक घुल घुल कर मिटते जाते हैं ।
उनकी ही अमर कहानी को गर्वीले कवि जन गाते हैं ॥

वह किला गया, वह कोट गया, वे तोपें, तीर कमान गये ।
वे वीर व्रती, वे धीर व्रती, वे लाखों जोध जवान गये ॥

वह रूप गया कुछ दुःख नहीं वह जोश गया तो जाने दो ।
हम को बस उनके गीत मिलें, हँस हँस कर हम को गाने दो ॥

मेरे आराध्य

जिनका जीवन मुझ को विस्मित कर देता है,
उनकी जीवन-रेखाओं में रङ्ग भरता हूँ।
जो होते आराध्य, पूज्य, प्रेमी मेरे,
उनको ही अपने शब्द समर्पित करता हूँ।

मैंने गाये हैं गीत अवध के आँगन के,
है सदा सराहा भाग्य यशोदा मैया का।
मैं शेर शिवा राणा प्रताप पर बलिहारी,
हूँ भक्त महात्यागी उस भामा भैया का।

बापू, पटेल के गुण गौरव का गायक हूँ,
चाचा नेहरू का मन्त्र सदा जपता हूँ।
मेरे विशाल भारत के इन सत्पुरुषों की,
इस तपोभूमि में काव्य तपस्या तपता हूँ।

मेरी पूजा के फूल वहीं पर चढ़ते हैं,
जहां परस्पर प्यार महकता रहता है।
वह घर मेरे भगवान का मन्दिर होता है,
जहां प्यार भरा परिवार चहकता रहता है।

मैं झुक झुक कर उन चरणों को चूमा करता,
जो चरण नया निर्माण किया करते हैं।
मेरी श्रद्धा के सुमन उन्हीं को अर्पित हैं,
जो हंस कर विष की घूंट पिया करते हैं।

× ×

मेरे आराध्य है शपथ मुझे इन चरणों की,
है आन आपके भाले और कटारी की,
इस मातृभूमि का कण कण मेरा सिर होगा,
है अटल प्रतिज्ञा माँ के तुच्छ पुजारी की ।

युग पहुँच रहा है चाँद सितारों से आगे,
सब बदल गये हैं मूल्य मान अब मानव के,
पर मैं तो छोड़ न पाया प्रेम पुरातन का,
चिपके बैठा हूँ उसी सनातन वैभव से ।

सचमुच, इस युग के महल मन्दिरों के आगे,
उन अमरों की बस्ती को फीकी पाता हूँ,
फिर भी इस खण्डहर की बासी बातों को,
यदि आज्ञा हो तो पुनः आज दोहराता हूँ ।

माँ का मान बढ़ायेंगे

लो उधर आ रहा सूरज ऊंचा नव किरणों का हार सजा,
लो उधर मुक्त मेघों से मिल फर फर फहराई विजय ध्वजा।
वह ऊपर देखो लूमझूम फूलों की लड़ियां लहराईं,
स्वर्गीय शहीदों ने शायद 'माँ' को मालाएं पहनाईं।

माँ देख आज अपने घर को अपने लालों से भरा हुआ,
माँ देख सिंहासन के ऊपर ज्योतिर्मय दीपक धरा हुआ।
इसकी आभा में देखो माँ ओजस्वी उज्जवल हीरों को,
यह अवसर याद दिलाता है अपने उन बांके वीरों को।

पद्मा मेवाड़ी महारानी क्षत्राणी अनुपम नारी थी,
शाही वैभव से अधिक जिसे भारत की गरिमा प्यारी थी।
गाती माँ तेरी महिमा को अग्नि में अन्तर्द्धान हुई,
दिल्लीश्वर मत्था फोड़ मरा वह मुक्ति की मेहमान हुई।

राणा माँ तेरा अमर पूत, रजपूत भरोसे भाले के,
खा खा कर सूखी घास लिया, लोहा उस दिल्ली वाले से।
झुक गई धरा नभ झुका कहीं पर शीशोदी सिर झुका नहीं,
घाटी की घटना कहती है वह चंचल चेतक रुका नहीं।

वह पट्ठा वीर मरट्ठा जो स्वामी समर्थ का चेला था,
माँ तेरे वन्धन मुक्त करूं यों कह कर बढ़ा अकेला था।
तोपों ने उगली आग उधर फुत्कार वो काले नाग चले,
डस गई इसानी लासानी मक्कार मदीने भाग चले।

सुन माँ की जय जय कार हुई, तैयार नई तरुणाई थी,
[illegible] के जौहर की ज्वाला अब तलक न बुझने पाई थी।
[illegible]गीन झेल कर सीने पर जिसने धरती दहलाई थी,
तेरी माला की लाल मणी लाडेसर लक्ष्मी बाई थी।

[illegible]: सात युगों के बाद पुनः बुझती चिनगारी चमक उठी,
जलियां जौहर की वह ज्वाला हर तरफ देश में दमक उठी।
बढ़ चले देश के नौनिहाल झुक चली जमातें गोधों की,
पटने के अञ्चल में देखो स्मृतियां उन बाल शहीदों की।

अनगिनती हीरे हरण हुए मोती मालाएं नष्ट हुईं,
इस पावन धरती की पुत्री कोमल कलिकाएं भ्रष्ट हुईं।
पर भीषण झन्झड़ उमड़ घना उनकी तोपों से रुका नहीं,
उठ बैठा डर के जो हुंकार भारत किंचित् भी झुका नहीं।

प्राची की पर्वत सीमा पर उस रोज गई झंकार सुनो,
बढ़ चलो बहादुर दिल्ली को, नेताजी की ललकार सुनो।
ला गया हिन्द होशियारी से यह गहराई का गोता था,
सेवाश्रम का वह वृद्ध संत स्वातन्त्र्य यज्ञ का होता था।

भारत छोड़ो महामानव ने पूर्णाहुति में यह मन्त्र दिया,
सन् सैंतालिस पंद्रह अगस्त को अपना देश स्वतन्त्र किया।
इस महा मोल में मिले हुये अनमोल रत्न को रखेंगे,
बापू ने बाग लगाया है इसके मीठे फल चखेंगे।

सौगन्ध तिरंगे की तुम को यदि इसका मान घटाया तो,
थूकेगी दुनिया हम पर यदि उन वीरों को बिसराया तो।
रामेश्वर द्वारिका तक्षशिला काशी बद्रीश्वर प्यारा है,
गौरी शंकर पर्वत से ले सागर तक देश हमारा है।

इसकी धरती पर तना हुआ सारा आकाश हमारा है,
इसके सूरज व चन्दा का सब पुण्य प्रकाश हमारा है।
इसके गुरभीले स्वर्ग देश जिसकी आंखें ललचावेंगी,
उसकी सोने की लंका भी क्षण भर में ही जल जावेगी।

आंखों के आगे वीर प्रभू पांचाली का पट फाट गया,
पीले मुंह का परदेशी आ बंगाल बीच से काट गया।
यह भी लोहू का घूंट पिया सह लिया किन्तु अब सहें नहीं,
अपनी केशरिया धरती से हम दूर कहीं भी रहें नहीं।

चित्तौड़ चिता हल्दी घाटी हे सोमनाथ के सिंह द्वार,
हम में भी वह विक्रम भर दो हे सिक्ख शहीदों के द्वार,
अपनी धरती के सभी पुत्र हम एक सूत्र में बंध जायें,
इस पुण्य पर्व पर मुक्त कण्ठ से यही प्रतिज्ञा दोहराएं,

मां का मान बढ़ायेंगे।

जागो सांची के स्तूप.......

गंगा के निर्मल जल वाले, उजली पर्वत माला वाले,
सूरज शशि के कुण्डल पहने, सागर की मृग छाला वाले,
जड़ चेतन में व्यापक वाणी वेदों के सद सूत्रों वाले,
भारत, शिव, सत्य हरिश्चन्द्र, गौतम जैसे पुत्रों वाले,

मेरे भारत ! माँ के मन्दिर कितना ऊंचा तेरा दर्शन,
जीवन मृत्यु सुख दुःख विषयक, कितना तेरा गहरा चिन्तन,
"सर्वे भवन्तु सुखिन" कह कर, तुमने सबको सुख दान दिया,
समदर्शी पण्डित का स्वरूप, बतला सबका सम्मान किया।

वैदिक युग का वह विशद ज्ञान, धीरे धीरे कुछ म्लान हुआ,
पाखंड प्रपंचो में पड़कर वह अमृत अन्तर्द्धान हुआ,
सच्चा स्वरूप था बदल चला व्यापक विधान थे भटक गये,
आदर्शों में उन्माद भरा वे लक्ष्य अधर में अटक गये।

वह था समाज या राज कि जिसने सारे मंत्र बदल डाले,
समता सूचक सुख दायक वे व्यापक तंत्र बदल डाले,
आत्मोन्नति का अधिकार मिला धन साध्य सुलभ उपकरणों को,
विद्या विवेक व कला मिली उन्नत अधिकारी वर्णों को।

रोटी टुकड़ों में टूट गई भूमण्डल मानो बिखर गया,
'एकोहं' का स्वर मौन हुआ गूंजा कोलाहल नित्य नया,
मानवता फिरकों में जकड़ी और भूल चली अपनेपन को,
भौतिक वैभव के जादू ने वहकाया भोले जन मन को।

संसार सुनहला नंदन वन इस को मिथ्या कहने वाले,
इन हरी भरी महफिल में भी उजड़े उदास रहने वाले,
खाने पीने में काट छांट, कहने सुनने में भी संयम,
ले घोट घोट मुन्तक मोटे हम दया दया बकते हरदम।

समता ने सत्यानाश किया, क्या घोड़े गधे बराबर हैं?
कितने ऊंचे हैं ये पहाड़, कितने नीचे ये सागर है?
इस दया अहिंसा करुणा ने, कायरता भर दी वीरों में,
जहां जोत जगी सी रहती थी, वहां राख रमी है हीरों में।

यह नया जमाना बोल उठा अब नये शास्त्र के सूत्रों में,
यज्ञों की युद्धों की लिप्सा जागी पृथ्वी के पुत्रों में,
धन ने धर्मों को मोल लिया, प्रतिभा प्रपञ्च में उलझ गई,
यह जीव जीव का भोजन है खोजी वेदों में बात नई।

गंगा के तट पर मीलों तक खूंटों की कई कतारें थी,
विधि से बांधे पशु बलि होते, विधि से पूजी तलवारें थी।
इस विधि में वध की भीम व्यथा जिसमें भोजन का घृणित स्वाद,
जिसमें स्वाहा का अट्टहास, जिसमें प्राणों का आर्तनाद।

इस जंत्र मंत्र इस जातिवाद, इन ऊंच नीच के घेरों में,
सीमित पृथ्वी सीमित प्रदेश विद्वेष घृणा के डेरों में,
एक नई जोत, एक नया स्रोत, एक नया भाव संचार हुआ,
श्री शुद्धोधन के आंगन में एक नया मनुज अवतार हुआ।

वह रूपवान सुन्दर जवान, वह शीलवान साकार काम,
पर उसको लुभा नहीं पाये उस कपिलवस्तु के दिव्य धाम,
वैभव हारा जीता विराग छिटकाये सब स्वर्गिक सुख भी,
जिनको छोड़ा बस छोड़ चले मुड़ कर न कभी देखा मुख भी।

जब न्याय निकम्मे होते हैं पाखण्ड धरा पर पलते हैं,
शूलों को फूल बनाने तब ये चरण अमीं पर चलते हैं,
वह सौम्य शान्त दुबला साधु फक्कड़ भिक्षुक दो रोटी का,
कम्मर में केवल पहने था दो गज भर पूर लंगोटी का।

ग्रहयोग

पृथ्वी, रवि, शशि, बुध, शुक्र, शनि, मंगल वरुणादिक बहुत बने ।
अपना अपना अस्तित्व लिए, चलते चक्कर में स्नेह सने ॥

उनमें अपनी मर्यादायें, उनमे अपने सीमित साधन ।
उनमें अपनी गति विधियां हैं, उनमें अपना प्रभु आराधन ॥

जो जितने ऊंचे स्थित हैं वे उतने ही उन्नत दिल वाले ।
उनकी दृष्टि में हैं समान, उजले नीले पीले काले ॥

सूरज सतरंगी किरणों से, कण कण में जीवन भरता है ।
धरती से लेकर अम्बर तक, नव दृश्य उपस्थित करता है ॥

रजनी के झिलमिल आंचल में, जब चन्द्र वदन मुस्काता है ।
तमसावृत जग के मानस में, उल्लास उफनता आता है ॥

यों गरम नरम उजली आभा, इन सौर सपूतों से पाकर ।
यह धरा बनी वसुधा पावन, रमणीक बने हैं रत्नाकर ॥

यह मंगलमय ग्रह मंडल तो, धरती के सौम्य सहोदर हैं ।
अपने बल वैभव के स्तर से, कुछ नीचे हैं कुछ ऊपर हैं ॥

ये नियमित हैं ये संयत हैं, इनसे इतना भय भरना क्यों ?
जब मामा दो पल मिलते हैं तो इस मिलने से डरना क्यों ?

ग्रह-मंडल से डरने वाले, तत्वों का तनिक खयाल करें ।
जीवन का सार समझने को, नौ * पेडी तक नीचे उतरें ॥

सीता जैसी सतवन्ती जो, राजा राघव की महारानी ।
जो रह न सकी अपने घर में, वो पी न सकी सुख से पानी ॥

महावीर प्रभु के चरणों में, कितनी लावण्य लुनाई थी ।
उन कमलों की शुचि सौरभ ले, इस महि ने महिमा पाई थी

उन सुखदाई के चरणों में एक शठ ने आग जलाई
उस अनुपम चूल्हे पर उस ने मन भाई खीर पकाई

*जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और

अच्छा सोचो अच्छा बोलो अच्छा करने में लगे रहो,
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय इस मध्य मार्ग पर लगे रहो,
समता पालो क्षमता रखो मृदुता सेवा से सने रहो,
पल पल परिवर्तित जीवन में, करुणा-मय कोमल बने रहो।

जब बुद्धदेव को बोध मिला सुरसरी मिल गई भारत को,
इस शान्ति दूत का संग मिला त्रातार मिल गया आरत को,
तिब्बत लंका जापान चीन वह हुआ व्याप्त सब वर्णों में,
झुक गये शीश सम्राटों के उस भिक्षुराज के चरणों में।

पर यह प्रवाह भी पुलिन छोड़ वह गया धरा से दूर कहीं,
बुद्धं शरणं गच्छामि का वह घोष हुआ चकचूर कहीं,
अस्त्रों शस्त्रों की दौड़ लगी अणु से उद्जन की होड़ चली,
इन महा नाश की घड़ियों में मानवता निज पथ छोड़ चली।

जागो हज़ारों वर्ष बाद भारत में स्वर्णिम थाल बजा,
हा मानव का अवतार हुआ माँ का फिर तोरण द्वार सजा,
य शान्ति शक्ति जय मान मुक्ति जय सजला सफला दिव्य धरा,
ओ सांची के स्तूप जगो है बोध गया।

वे सौम्य सहोदर हलधर के, श्रीगज शुक माल परम प्यारे ।
जिन के मखमल से मस्तक पर, धर दिये धधकते अंगारे ॥

वह सत्य अहिंसा का साधक, आराधक था आजादी का ।
कम्मर में केवल रखता था, एक पूर अधूरा खादी का ॥

महावीर बुद्ध के बाद यहां, कहो ऐसा मसीहा कौन हुआ ?
उस के भी गोली तीन लगी, हे ! राम, कहा फिर मौन हुआ ॥

हम देख रहे हैं दूर तलक इन इतिहासों की कड़ियों को ।
उत्थान पतन को लिए हुए, इन घटनाओं की लड़ियों को ॥

इन में संयोग लगा है क्या इन ग्रह मंडल की घातों का ।
ये विश्व विहित दुर्घटनाएं क्या उत्तर देंगी इन बातों का ॥

यह जीव जन्म जन्मान्तर से, जाने क्या क्या करता आया ।
उत्तम मध्यम जो किया गया, उस से यह घट भरता लाया ॥

जैसी करनी वैसी भरनी, यह सार सभी के साथ रहा ।
अपने को कैसा बना सके, यह तो अपने ही हाथ रहा ॥

यदि शुभ करणी संजोग हुए, पथ के टीले टल जाएंगे ।
पावक पानी बन जायेगी, ग्रह मंडल भी गल जाएंगे ॥

अच्छा सोचें अच्छा बोलें अच्छा ही नित व्यवहार करें ।
हम सरल स्नेही जीवन में, मुस्कानों की महकार भरें ॥

यह व्यंग्य विषैला कांटा है, इस को वाणी से दूर करें ।
यह क्रोध गजब का गोला है, धर दूर कहीं चकचूर करें ॥

संयम से स्नेह बढ़ालें तो यह सोना सुरभित हो जाये ।
फिर कुटिल कल्पनातीत काम का कुंभकरण भी सो जाये ॥

सोम सूर्य मंगल इत्यादिक अपना ही परिवार है ।
ये हैं पार्थिव पिण्ड अतः डरने की क्या दरकार है ?

डर तो उन षट् रिपुओं का है जो घट घट में घुस आये हैं ।
कितनी द्रौपदियां दलित हुईं, कितने ही दीप बुझाये हैं ॥

पंच महाव्रत पंच कुंड में काम क्रोध को दहन करें ।
स्नेह शान्ति ममता समता से, आओ शाश्वत हवन करें ॥

सादा स्वागत

धर कूचां धर मजलां

जब न्याय निकम्मे होते हैं, पाखण्ड धरा पर पलते हैं।
शूलों को फूल बनाने तब, ये चरण जमीं पर चलते हैं ॥
धर कूचां धर मजलां ये चढते बढ़ते चरण चले ।
सांझ हुई तो ठहर गये और भोर हुआ फिर बह निकले ॥

अपना बोझ उठा कान्धे,
लक्ष्य कहीं लम्बा बान्धे,
घोर घनी गिरती शरदी,
आग बनी धधके धरती,

रुके नहीं, झुके नहीं, तूफानों में दीप जले ॥

ये मंगल महल लुभा न सके,
ये वृद्ध बड़े बहला न सके,
माँ-बहनों के उमड़े आंसू,
इनको किंचित् पिघला न सके,

ना कोई मोह ना कोई द्रोह पग मोड़ेंगे कहीं छाँह तले ॥

तुम कमल विमल हम सरवर हैं,
तुम सुमन सजल, हम तरुवर हैं,
तुम रवि शशि हो, हम धन्य धरा,
जिस पर तव ज्योति चरण उतरा,

योग कहां औ वियोग कहां ? युग युग तक पावन प्यार पले ॥

विनम्र अनुरोध—

मानता हूं देव ! यह जेठ की प्रचण्ड धूप,　　　　　　(चु)
　　धोरों वाली धरा पर धूनी सी धुकाती है ।
जानता हूं देव ! इन चरणों की चारुता को,
　　छूने में जिन्हें यह भू स्वयं सकुचाती है ।
देखता हूं नित्य भाई बहनों की हजारों आंख,
　　दर्शन सुधा से जो कभी भी न अघाती है ।
तो भी सेवा स्वाति की हो प्यासी हे आनन्द घन,
　　चूरू बनी चातकी पुकारे दिन राती है ॥१॥

भरे हुए अञ्जली में भावों के सुरंगे फूल,　　　　　　(रू)
　　विज्ञजन विधिवत् विनती उचारते ।
प्रभु के प्रसाद से ये सज्जन सुजान, ऐसी,
　　लाभ वाली होड में हमेशा बाजी मारते ।
किन्तु मेरे प्रभु का है शासन समानता का,
　　राजा और रंक पै समान ध्यान धारते ।
हाथियों को मण यदि देना है तो देते, पर,
　　कीडी वाले कण को भी चित्त से न टारते ॥२॥

बंग व बिहार के अनन्त व असंख्य पथ,　　　　　　(सो)
　　कीचड व कंकरों से भरे इतराते हैं ।
उत्तरी प्रदेश व पंजाब के निराले क्षेत्र,
　　देखो जहां नदी और नाले बल खाते है ।
खड़े हैं पहाड़ वे दहाड सुनें शेरों की जो,
　　ऐसे उस मेवाड़ में आ अलख जगाते हैं ।
शबरी के बेर या अहिल्या के उद्धार हेतु,
　　आप के ये चरण बढे ही चले आते हैं ।

आचार्य श्री तुलसीगणी उन दिनों बीदासर विराजते थे । चूरू से अनेक सज्जन, आचार्य श्री से चूरू पधारने की प्रार्थना लेकर बीदासर गये थे । विहारी जी भी चाहते थे कि चूरू के लोगों को यह लाभ अवश्य प्राप्त हो, इसलिये वे भी बीदासर पहुँचे और उन्होंने वहीं २१-५-६३ को उपरोक्त छन्दों की रचना कर आचार्य श्री के समक्ष अपने हार्दिक उद्गार प्रस्तुत किये थे ।

धर कूचां धर मजलां

जब न्याय निकम्मे होते हैं, पाखण्ड धरा पर पलते हैं।
शूलों को फूल बनाने तब, ये चरण जमीं पर चलते हैं॥
धर कूचां धर मजलां ये चढते बढ़ते चरण चले।
सांझ हुई तो ठहर गये और भोर हुआ फिर बह निकले॥

अपना बो कान्धे,
लक्ष्य बान्धे,
घोर शरदी,
आग धरती,

पर रुके

विश्व वंद्य बापू से-

उनकी ६२वीं वर्ष गांठ पर—

वर्ष हो गये बानवे, हुआ एक अवतार ।
राम कृष्ण गौतम ईसा का शुद्ध रूप साकार ॥
पावन हुआ पोर बंदर व गूंज उठी गुजरात ।
उगा सूर्य पश्चिम में उस दिन, लेकर पुण्य प्रभात ॥
चला सुदर्शन मन मोहन का, हटा कंस का राज ।
जगमग जगमग लगा चमकने, भारत माँ का ताज ॥
उड़े तिरंगा मुक्त गगन में, झूम रही जयमाल ।
गरज रहा है लाल किले पर, वीर जवाहरलाल ॥
खादी आजादी समता का लिये हुये सद्‌भाव ।
सत्य अहिंसा स्वाभिमान व देश भक्ति का चाव ॥
बापू तेरी चरण धूलि में पाना जग विश्राम ।
निर्गुण सुगुण जहां जो हो तुम, लो मेरे प्रणाम ॥

वीर जवाहर

डाक्टर हो या पंडितजी हो, या हो जंगी लाट,
नाहर वीर जवाहर हो, या युवक-हृदय-सम्राट,
कमलेश्वर हो, विजया-बन्धु, इन्दू-पिता अनूप,
तुम नवयुग के निर्माता हो, नव भारत के भूप ।
मिला दुग्ध सा मुग्ध कलेवर, मिला कमल का मेल,
मिली मर्द को मंगल वर सी, निष्ठुर नैनी जेल,
तपा युगों तक तरुण तपस्वी, घुल घुल तपी जवानी,
यही तपोवन कहा करेंगे तेरी अमर कहानी ।
आज स्वयं वसुधा आई है भर कुंकुम का थाल
मुदित हिमालय! झुका तनिक तव सदा सुनहला भाल
अरुण रेख अभिषेक तुम्हारा अभिनन्दन हे आर्य !
मिलें हमें शत वर्ष तलक यह ओज तेज औदार्य !

गाँधी ही गाँधी गूंज रहा....

जग कहता है चले गये हैं जग के वे आधार कहीं।
जाया करते हैं बिरले जहाँ स्वर गंगा के पार कहीं॥
जावेगा फिर कौन स्वर्ग में नित बैठा जो स्वर्ग रचे।
जिसमें विश्वंभर रहता हो कौन भला वैकुण्ठ रचे॥

इसी विश्व के अंचल में वे शान्त समाधि लेते हैं।
आंखों वालों से पूछो वे हर जगह दिखाई देते हैं॥
वे दीख रहे हैं आज हमें यमुना की उज्ज्वल झलकों में।
वे मौन मनस्वी बैठे हैं, नेहरू की निश्चल पलकों में॥

सरदार मौन मुख बन्द किये मन ही मन में क्या गुनते हैं?
अन्तस में बैठे वे अपने बापू की वाणी सुनते हैं॥
बापूजी अभी विराजे हैं मानो अति मंजुल वाणी में।
उनकी मंगल ध्वनि गूंज रही है भारत की रजधानी में॥

इस तरफ जरा मुड़ कर देखो लाखों ही लक्ष्मी आती हैं।
अनगिनती मांखें झुक झुक कर मोती माला पहनाती हैं॥
कैसे मानूं वे चले गये हैं स्वर गंगा के पार कहीं।
जब रोम रोम में पुलक रहा है उनका उज्ज्वल प्यार यहीं॥

बापू ही बापू गूंज रहा बच्चों की तुतली बोली में।
गांधी ही गांधी गूंज रहा है गली गली की टोली में॥

गाँधी ही गाँधी गूंज रहा..

जग कहता है चले गये हैं जग के वे आधार कहां
जाया करते हैं विरले जहाँ स्वर गंगा के पार कहीं
जावेगा फिर कौन स्वर्ग में नित बैठा जो स्वर्ग
जिसमें विश्वंभर रहता हो कौन भला वैकुण्ठ र

इसी विश्व के अंचल में वे शान्त समाधि लेते
आंखों वालों से पूछो वे हर जगह दिखाई देते
वे दीख रहे हैं आज हमें यमुना की उज्ज्वल झलकों
वे मौन मनस्वी बैठे हैं, नेहरू की निश्चल पलकों

सरदार मौन मुख बन्द किये मन ही मन में क्या गु
अन्तस में बैठे वे अपने बापू की वाणी सुनते
बापूजी अभी विराजे हैं मानो अति मंजुल वा
उनकी मंगल ध्वनि गूंज रही है भारत की रजधा

इस तरफ जरा मुड़ कर देखो लाखों ही लक्ष्मी
अनगिनती मांगें झुक झुक कर मोती माला
कैसे मानूं वे चले गये हैं स्वर
जब रोम रोम में पुलक

जैन-धर्म को चूरू जिले की देन

—गोविन्द अग्रवाल

जैन धर्म के विकास, प्रचार और प्रसार में कम से कम एक सहस्राब्दी से चूरू जिले के इस भू-भाग का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। इस सम्बन्ध में प्रकाश की प्रथम किरण हमें चूरू जिले के एक कसबे रिणी (अब तारानगर) से मिलती है। रिणी या रेणी चूरू जिले का एक बहुत प्राचीन नगर है[1]। बीकानेर राज्य के इतिहास में डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखा है – कहते हैं कि इसे राजा रिणीपाल ने कई हजार वर्ष पूर्व बसाया था। उस के अन्तिम वंशधर जसवंतसिंह के समय लगातार कई बार अकाल पड़ने से यह नष्ट हो गया। यही बात बीकानेर के अन्य इतिहास ग्रन्थों में भी मिलती है। इसी जसवंत डाहलिये के समय में वि. स. ९९९ में रिणी में जैन मन्दिर का निर्माण हुआ था, जिससे इस संभावना को बल मिलता है कि उक्त संवत् से पूर्व ही इस क्षेत्र में जैन धर्म का प्रभाव था और जैन धर्मावलम्बी यहां बसते थे। मन्दिर निर्माण और जसवन्त डाहलिया के सम्बन्ध में बीकानेर के ज्ञान-भण्डार के एक पत्र से जानकारी प्राप्त होती है, जो निम्न है –

"सं. ९९९ मिती फागुन वदि १३ बुधवार पाछले पुहर श्री रिणी में जैन री देहरो तिण री नींव दीवी सेठ लखो खेतो लालावत रो करायो बहू गोष्ण बेटी देवें हेमावत री देहरे री सोंप भोजग जैतो देवें रे नुं थी जसें देदावत रो बेटो राज जसवंत डाहलियें रो गणेश नीवावत रो राज फोगे देहरे रो भीखो लगावह अहमद चरस मा देहरो प्रमाण चढ्यो देहरो श्री शीतलनाथजी रो तेहनी उत्पत्त जाणवी।"

उपरोक्त पत्र में एक नाम 'फोगा' आया है। फोगां (गांव) चूरू से लगभग १२ कोस उत्तर पश्चिम और इतनी ही दूर रिणी से दक्षिण ... पड़ता है। यह नगर भी बहुत प्राचीन है। सम्भव है वहां फोगा नाम ... जाति का आधिपत्य रहा हो या तत्कालीन शासक का यह नाम हो। फोगां रिणी के साथ ही लगातार अकाल पड़ने से विक्रम की ११वीं शताब्दी के ... चरण में वीरान हो गया। इस सम्बन्ध में एक बहुप्रचलित जनश्रुति ... यह है—

---

[1] पाणिनिकालीन भूगोल का विशद विवेचन करते हुए स्व. श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने तत्कालीन 'रोणी' के आधुनिक 'रिणी' होने की संभावना व्यक्त की है।

[स्वा]भाविक है, फलतः बड़ी संख्या में मनुष्य तथा पशुपक्षी मरे होंगे। ब्राह्मण-[ध]र्म के ह्रास व जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव से खीझकर तत्कालीन हिन्दू धर्म नेताओं ने जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को ही प्रकृति के सारे प्रकोपों का [एक] कारण बतला कर प्रचार किया हो, जिसके फलस्वरूप ऐसी जन-श्रुतियां [प्रच]लित हुई हों। कारण चाहे जो भी रहे हों, लेकिन इन मान्यताओं से यह [धा]रणा पुष्ट होती है कि उस वक्त इस क्षेत्र में जैन धर्म का प्रभाव बढ़ रहा [था]।

फोगां का प्राचीन नाम 'फोग पत्तन'[1] था और संभवतः तब यह एक [सम]ृद्धिशाली नगर था। लेकिन जब यह वीरान हो गया तो इस का सारा वैभव [भी] समाप्त हो गया और जब बहुत समय बाद अपने टूटे फूटे रूप में फिर बसा [तो] 'फोगपत्तन' के स्थान पर इसका लघुतासूचक नाम "फोगां" ही शेष रह [गया][2]। उजड़े हुए फोगां के इर्द गिर्द लोग आ आ कर बसने लगे, लेकिन फोगां के [२२] वासों में से ३ आज भी जन-शून्य पड़े हैं। इन वासों के 'भरथरी','मुगड़वास' [आ]दि नाम इनकी प्राचीनता के द्योतक हैं और आज भी वहां से प्राचीन अवशेष [प्राप्]त होते हैं।

चूंकि कोयलापट्टन एक बहुत प्रसिद्ध नगर था, इसलिए कालान्तर में [लो]ग इसके असली नाम 'फोग पत्तन' को भुलाकर कोयला पट्टन कहने लगे और [बू]ढ़े लोग आज भी वैसा ही कहते हैं। लेकिन वास्तव में इसका सही नाम [फोग] पत्तन था और यह जैनधर्म का केन्द्र बन गया था। जैन धर्म की यह परं-[परा] यहां बाद तक चलती रही। विक्रम की १८वीं शताब्दी में होने वाले खर-[तर]गच्छीय भट्टारक शाखा के सुप्रसिद्ध जैन आचार्य श्री जिन सुखसूरि जी इसी [फोग]पत्तन के थे।

---

[1] [प्रा]चीनकाल में अनेक नगरों के नामों के साथ 'पत्तन' शब्द जुड़ा होता था, वाल्मीकि रामायण [में] 'मुरवीपत्तन' नगर का उल्लेख मिलता है—

मुरवीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम्।

किष्किन्धा काण्ड ४२।१३

[कबी]र की साखियों में भी 'पत्तन' का उल्लेख हुआ है—

वे पुर पत्तन वे गली, बहुरि न देखें आय।

[2] [कु]छ समय पूर्व श्री देवेन्द्र हाण्डा को फोगां से बलबन, अलाउद्दीन खिलजी आदि के कुछ [सिक्]के प्राप्त हुए हैं, जिन से इस धारणा की पुष्टि होती है कि ईसा की 13वीं शताब्दी में लोग [यहां] बसने शुरू हो गये थे।

(२) जैन धर्म को चूरू जिले की देन

पहले इस नगर का नाम कोयलापट्टन था। यहां शृङ्गी ऋषि का धूना था। एक बार ऋषि ने अपने शिष्य से कहा कि मैं समाधि लगाता हूं और जब तक मेरी समाधि न खुले तब तक तुम भिक्षाटन करके अपना निर्वाह करना। यों कह कर ऋषि समाधिस्थ हो गये। बारह वर्ष बाद जब उन की समाधि टूटी तो उन्होंने शिष्य को अत्यन्त कृशकाय देखा। गुरु के पूछने पर शिष्य ने उत्तर दिया कि आजकल यहां जैन धर्म का प्रभाव बहुत बढ़ गया है और जैन धर्म को अपनाने वाले लोग हमें भिक्षा नहीं देते। शिष्य की बात सुन कर ऋषि बड़े कुपित हुए। उन्होंने धूने से जरा सी भस्म ली और मन्त्रोच्चार के साथ रोषपूर्वक भस्म को नगर की ओर फेंकते हुए कहा, "अट्टण पट्टण सै डट्टण"। ऋषि के शाप से वहां महाध्वंस का दृश्य उपस्थित हो गया, धूल और राख की भयंकर वर्षा हुई और नगर उलट गया।

रिणी का प्राचीन जैन मन्दिर अपने वर्तमान रूप में

यद्यपि जन श्रुतियों में मूल तथ्य बीज रूप से सुरक्षित रहता है, किन्तु
ों - सहस्राब्दियों तक कंठाग्र चलते रहने के कारण मूल तथ्यों के साथ
क बातें भी जुड़ जाती हैं। यहां भी संभवतः ऐसा ही हुआ है। रिणी
मन्दिरों के निर्माण से यह तो स्पष्ट है कि दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध
न धर्म प्रभावशाली था और ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहां लगा-
कर दुर्भिक्ष पड़े थे। वर्षा न होने से तेज रेतीले तूफानों का चलना

स्वाभाविक है, फलतः बड़ी संख्या में मनुष्य तथा पशुपक्षी मरे होंगे। ब्राह्मण-धर्म के ह्रास व जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव से खीझकर तत्कालीन हिन्दू धर्म के नेताओं ने जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को ही प्रकृति के सारे प्रकोपों का मूल कारण बतला कर प्रचार किया हो, जिसके फलस्वरूप ऐसी जन-श्रुतियां प्रचलित हुई हों। कारण चाहे जो भी रहे हों, लेकिन इन मान्यताओं से यह धारणा पुष्ट होती है कि उस वक्त इस क्षेत्र में जैन धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था।

फोगां का प्राचीन नाम 'फोग पत्तन'[1] था और संभवतः तब यह एक समृद्धिशाली नगर था। लेकिन जब यह वीरान हो गया तो इस का सारा वैभव भी समाप्त हो गया और जब बहुत समय बाद अपने टूटे फूटे रूप में फिर बसा तो 'फोगपत्तन' के स्थान पर इसका लघुतासूचक नाम "फोगां" ही शेष रह गया[2]। उजड़े हुए फोगां के इर्द गिर्द लोग आ आ कर बसने लगे, लेकिन फोगां के वासों में से ३ आज भी जन-शून्य पड़े हैं। इन वासों के 'भरथरी', 'सुगड़वास' आदि नाम इनकी प्राचीनता के द्योतक हैं और आज भी वहां से प्राचीन अवशेष प्राप्त होते हैं।

चूंकि कोयलापट्टन एक बहुत प्रसिद्ध नगर था, इसलिए कालान्तर में लोग इसके असली नाम 'फोग पत्तन' को भुलाकर कोयला पट्टन कहने लगे और बूढ़े लोग आज भी वैसा ही कहते हैं। लेकिन वास्तव में इसका सही नाम फोग पत्तन था और यह जैनधर्म का केन्द्र बन गया था। जैन धर्म की यह परंपरा यहां बाद तक चलती रही। विक्रम की १८वीं शताब्दी में होने वाले खरतरगच्छीय भट्टारक शाखा के सुप्रसिद्ध जैन आचार्य श्री जिन सुखसूरि जी इसी फोग पत्तन के थे।

---

[1] प्राचीनकाल में अनेक नगरों के नामों के साथ 'पत्तन' शब्द जुड़ा होता था। वाल्मीकि रामायण में 'मुरवी पत्तन' नगर का उल्लेख मिलता है—

मुरवीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम् ।

किष्किन्धा काण्ड ४२।१२

कबीर की साखियों में भी 'पत्तन' का उल्लेख हुआ है—

वे पुर पत्तन वे गली, बहुरि न देखै आय।

[2] कुछ समय पूर्व श्री देवेन्द्र हाण्डा को फोगां से बलबन, अलाउद्दीन खिलजी आदि के कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिन से इस धारणा की पुष्टि होती है कि ईसा की 13वीं शताब्दी में लोग यहां बसने शुरू हो गये थे।

पहले इस नगर का नाम कोयलापट्टन था। यहां शृङ्गी ऋषि का धूना था। एक वार ऋषि ने अपने शिष्य से कहा कि मैं समाधि लगाता हूं और जब तक मेरी समाधि न खुले तव तक तुम भिक्षाटन करके अपना निर्वाह करना। यों कह कर ऋषि समाधिस्थ हो गये। वारह वर्ष वाद जव उन की समाधि टूटी तो उन्होंने शिष्य को अत्यन्त कृशकाय देखा। गुरु के पूछने पर शिष्य ने उत्तर दिया कि आजकल यहां जैन धर्म का प्रभाव बहुत बढ़ गया है और जैन धर्म को अपनाने वाले लोग हमें भिक्षा नहीं देते। शिष्य की बात सुन कर ऋषि बड़े कुपित हुए। उन्होंने धूने से जरा सी भस्म ली और मन्त्रोच्चार के साथ रोषपूर्वक भस्म को नगर की ओर फेंकते हुए कहा, "अट्टण पट्टण सै डट्टण"। ऋषि के शाप से वहां महाध्वंस का दृश्य उपस्थित हो गया, धूल और राख की भयंकर वर्षा हुई और नगर उलट गया।

रिणी का प्राचीन जैन मन्दिर अपने वर्तमान रूप में

.द्यपि जन श्रुतियों में मूल तथ्य वीज रूप से सुरक्षित रहता है, किन्तु ां - सहस्राब्दियों तक कंठाग्र चलते रहने के कारण मूल तथ्यों के साथ .. वातें भी जुड़ जाती हैं। यहां भी संभवतः ऐसा ही हुआ है। रिणी मन्दिरों के निर्माण से यह तो स्पष्ट है कि दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध न धर्म प्रभावशाली था और ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहां लगा- ..र दुर्भिक्ष पड़े थे। वर्षा न होने से तेज रेतीले तूफानों का चलना

स्वाभाविक है, फलतः बड़ी संख्या में मनुष्य तथा पशुपक्षी मरे होंगे। ब्राह्मण-धर्म के ह्रास व जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव से खीझकर तत्कालीन हिन्दू धर्म के नेताओं ने जैन धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को ही प्रकृति के सारे प्रकोपों का मूल कारण बतला कर प्रचार किया हो, जिसके फलस्वरूप ऐसी जन-श्रुतियां प्रचलित हुई हों। कारण चाहे जो भी रहे हों, लेकिन इन मान्यताओं से यह धारणा पुष्ट होती है कि उस वक्त इस क्षेत्र में जैन धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था।

फोगां का प्राचीन नाम 'फोग पत्तन'[1] था और संभवतः तब यह एक समृद्धिशाली नगर था। लेकिन जब यह वीरान हो गया तो इस का सारा वैभव भी समाप्त हो गया और जब बहुत समय बाद अपने टूटे फूटे रूप में फिर बसा तो 'फोगपत्तन' के स्थान पर इसका लघुतासूचक नाम "फोगां" ही शेष रह ...[2]। उजड़े हुए फोगां के इर्द गिर्द लोग आ आ कर बसने लगे, लेकिन फोगां के ...वासों में से ३ आज भी जन-शून्य पड़े हैं। इन वासों के 'भरथरी', 'मुगड़वास' ...दि नाम इनकी प्राचीनता के द्योतक हैं और आज भी वहां से प्राचीन अवशेष ...त होते हैं।

चूंकि कोयलापट्टन एक बहुत प्रसिद्ध नगर था, इसलिए कालान्तर में ...ग इसके असली नाम 'फोग पत्तन' को भुलाकर कोयला पट्टन कहने लगे और ...बूढ़े लोग आज भी वैसा ही कहते हैं। लेकिन वास्तव में इसका सही नाम ...पत्तन था और यह जैनधर्म का केन्द्र बन गया था। जैन धर्म की यह परं-...यहां बाद तक चलती रही। विक्रम की १८वीं शताब्दी में होने वाले खर-...गच्छीय भट्टारक शाखा के सुप्रसिद्ध जैन आचार्य श्री जिन सुखसूरि जी इसी ...पत्तन के थे।

---

[1] ...चीनकाल में अनेक नगरों के नामों के साथ 'पत्तन' शब्द जुड़ा होता था, वाल्मीकि रामायण ...'मुरवी पत्तन' नगर का उल्लेख मिलता है–

मुरवीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम्।

किष्किन्धा काण्ड४२।१३

...र की साखियों में भी 'पत्तन' का उल्लेख हुआ है–

वे पुर पत्तन वे गली, बहुरि न देखे आय।

[2] ...इस समय पूर्व भी देवेन्द्र हायड़ा को फोगां से बलबन, अलाउद्दीन खिलजी आदि के कुछ ...के प्राप्त हुए हैं, जिन से इस धारणा की पुष्टि होती है कि ईसा की 13वीं शताब्दी में लोग ...यहां बसने शुरू हो गये थे।

शेष सारी जिन प्रतिमायें हैं जिनमें से ६ पर लेख उत्कीर्ण हैं, इनमें से
: पर तो समय भी अङ्कित है। धातु प्रतिमाओं पर सं० १०६३ से ११६० तक
लेख हैं। धातु प्रतिमाओं में से एक अम्बिका, नवग्रह, यक्षादि युक्त आदिनाथ
वतीर्थी है, जिसका आकार १२"×८" है। इस पर सं० १०६३ का लेख
—

संवत् १०६३ चैत्र सुदि ३...तिभद्र पुत्रेण अह्लकेन महा (प्र) तामा
ारिते। देव धर्म्मन्गाय सुरुप्सुता महा पिवतु।
प प्रतिमाओं में पार्श्वनाथ त्रितीर्थी, सप्तफणातीर्थी, पञ्चतीर्थी व चौमुख सम-
सरण आदि हैं।

दो पाषाण प्रतिमाओं में से एक बाईसवें जैन तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ
ी है, जो मकराने की बनी है। इसका आकार २१"×१७" है, मूर्ति पर कोई
भिलेख नहीं है, लेकिन यह ईसा की बारहवीं शताब्दी की अनुमानित है।
सरी पाषाण प्रतिमा भगवान् महावीर की है। यह भी मकराने की बनी है।
सका आकार १७"×१४" है तथा इस पर सं० १२३२ का लेख उत्कीर्ण है—

६ संवत् १२३२ ज्येष्ठ सुदि ३ श्री खंडिल्ल गच्छे श्री वर्द्धमानाचार्य
संताने साधु तेहड़ तत्पुत्र-राघराभ्यां कारिता नव्यामूर्तिशाच ॥६

बीकानेर में सं. १६६२ चैत्र वदि ७ को श्री जिनचन्द्र सूरि ने ऋषभदेव
के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। इसी दिन अमरसर के श्रावकों द्वारा निर्मापित श्री
अजितनाथ की प्रतिमा भी प्रतिष्ठापित हुई (सं. १६६२ वर्षे चैत्र वदि ७ दिने
श्री अमरसर। वास्तव्य श्रीमाल ज्ञातीय वहुमरा गोत्रे... श्री श्री अजित बिंबं
कारितं...)। इन सब प्रमाणों से ज्ञात होता है कि चूरू जिले का यह ग्राम
११वीं से लगाकर १७वीं शताब्दी तक जैन धर्म का केन्द्र रहा है।

विक्रम की ११वीं शताब्दी से लगाकर १३वीं शताब्दी के मध्य
चूरू जिले का यह भू-भाग और इसके आस-पास का क्षेत्र भी चौहान शासकों के
अधिकार में रहा। १३वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तो चौहान साम्राज्य का
विस्तार बहुत अधिक बढ़ गया था और दिल्ली तक चौहान साम्राज्य का एक
अंग था। चौहान नरेशों ने जैन धर्म को भरपूर संरक्षण दिया, अतः उन के
शासन काल में इस सारे क्षेत्र में जैन धर्म खूब फला फूला। उस समय चूरू

जिले के आस-पास कई नगर नोहर, पल्लू,[1] नरहड़ और लाडनूं[2] आदि भी जन धर्म के केन्द्र थे।

नोहर में श्री पार्श्वनाथजी का एक जैन मन्दिर है, जिसके शिला पट्ट पर सं० १०८४ का लेख है। रिणी के बाद प्राचीन जैन मन्दिरों में इसकी गणना की जाती है। पल्लू से प्राप्त दो जैन सरस्वती प्रतिमाओं की कला तो वेजोड़ है। दोनों मूर्तियां श्वेत संगमरमर की हैं, जो डॉ० टसीटोरी को प्राप्त हुई थीं। दोनों मूर्तियाँ लगभग एक जैसी हैं, परिकर सहित इनकी ऊंचाई ४ फुट ८ इंच है। इनमें से एक मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में प्रदर्शित है और दूसरी बीकानेर संग्रहालय में। इसी प्रकार नरहड़ से २ जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। एक मूर्ति कायोत्सर्ग करते हुए पञ्चम तीर्थङ्कर श्री सुमतिनाथ की है और दूसरी श्री नेमिनाथ की। दोनों ही मूर्तियां अप्रतिम सौन्दर्यमयी हैं लाडनूं का दिगम्बर जैन मन्दिर भी बहुत पुराना है।

उपरोक्त जैन मंदिरों, मूर्तियों और अभिलेखों के आधार पर इस क्षे में जैन धर्म के तत्कालीन वैभव और विस्तार का अनुमान सहज ही लगाया ज सकता है। लेकिन सम्राट पृथ्वीराज की पराजय (वि. सं. १२४९) के पश्चा विस्तृत चौहान साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और जैन धर्म पर भी इसका प्रति कूल प्रभाव पड़ा। १३वीं शताब्दी के मध्य से लगाकर १६वीं शताब्दी के पूर्वा तक इस क्षेत्र की स्थिति अत्यन्त अस्थिर रही। सारा क्षेत्र छोटे छोटे टुकड़ में बट गया। इस समय का कोई विशेष वृत्त प्राप्य नहीं है। १६वीं शताब्दी के मध्य तक राठौड़ों का शासन इस भू-भाग पर जम गया। लड़ाई झगड़े हो रहने पर भी यह शासन पहले की अपेक्षा सुदृढ़ और सुस्थिर था। इसके बा जैन धर्म की गतिविधियों के सम्बन्ध में फिर से कुछ जानकारियां मिलने लगने हैं राठौड़ों का शासन स्थापित होने के बाद चूरू जिले में कई जैन मन्दिरों दादाबाड़ियों और उपाश्रयों आदि का निर्माण हुआ। जैन आचार्यों, भट्टारकों

---

[1] [illegible]हर और पल्लू आदि पहले चूरू जिले की एक तहसील रेणी (तारानगर) के अन्तर्गत थे। [illegible] दिनों भूतपूर्व बीकानेर राज्य की एक निज़ामत थी, जिसके अन्तर्गत नोहर तहसील भी थी [illegible] अब नोहर तहसील को चूरू जिले के निकटवर्ती जिले श्री गंगानगर में मिला दिया [illegible] जिससे राजनैतिक दृष्टि से वह भू-भाग चूरू जिले से अलग हो गया है।

[2] [illegible] भी कभी [illegible] द्रोणपुर के मोहिलों के अधिकार में था, किन्तु बाद में राव बीका[illegible] [illegible] राव [illegible] के आग्रह पर उन्हें दे दिया, जिससे वह मारवाड़ [illegible] [illegible] गया।

यतियों और मुनियों का जनता और शासन पर यथेष्ठ प्रभाव रहा और चूरू जिले की जनता ने भी जैन धर्म को अपना योगदान दिया।

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व जैन श्रमण संघ श्वेताम्बर और दिगम्बर नामों से दो सम्प्रदायों में बंट गया था। आगे चलकर इन दोनों में से भी अनेक उप सम्प्रदाय बने। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अनेक गच्छों (गणों) की उत्पत्ति समय समय पर होती रही। इन में से जिन गच्छों का यहां विशेष प्रभाव रहा, उनके सम्बन्ध मे कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायेगा।

खरतरगच्छ

खरतरगच्छ एक प्रभावशाली गच्छ रहा है और इस गच्छ को चूरू जिले की महत्त्वपूर्ण देन है। विक्रम की सतरहवीं शताब्दी के प्रारभ से ही इस सबध में उल्लेख प्राप्त होने लगते हैं। युगप्रधान जिनचंद्र सूरि जी (६) ने वि. सं. १६२५ में चूरू जिले के बापडाऊ (बापेऊ) ग्राम में और १६३७ मे मेरूणा ग्राम (तहसील डूंगरगढ़) में चातुर्मास किया था। इसके पश्चात् जब बादशाह अकबर ने विशेष आग्रह कर के उन को लाहौर आने के लिये आमन्त्रित किया तो वे चूरु जिले के अनेक गांवों, बापेऊ, पड़िहारा, मालासर आदि होते हुए रिणी[1] पहुँचे। वहां के लोगों ने सूरिजी का स्वागत किया। समस्त संघ के साथ मंत्री ठाकुरसिंह के पुत्र रायसिंह ने प्रवेशोत्सवादि कर के गुरु भक्ति की। वहां महिम का संघ सूरिजी के दर्शन करने के लिए आया, श्री शीतलनाथ स्वामी के प्राचीन भव्य जिनालय के दर्शन पूजन कर सूरिजी को वदन कर वापिस गया और तब सूरिजी ने लाहौर की ओर प्रस्थान किया।

युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि (६) के स्वर्गवास (सं. १६७०) के पश्चात् क्रमशः श्री जिनसिंह सूरि, श्री जिनराज सूरि (२), श्री जिनरत्न सूरि, श्री जिनचन्द्र सूरि (७), श्री जिनसुख सूरि, श्री जिनभक्ति सूरि, श्री जिनलाभ सूरि, श्री जिनचन्द्र सूरि (८), श्री जिनहर्ष सूरि, श्री जिन सौभाग्य सूरि, श्री जिन-

1. कविवर समय सुन्दरोपाध्याय कृत युग प्रधान श्री जिनचन्दसूरि अष्टक में भी रिणी का उल्लेख हुआ है—

"मारवाड़ रिणी गुरु वन्दन को, तरसैं सरसैं विच वेग वहे।"

सत्तरहवीं शताब्दी के उपाध्याय ललितकीर्ति के शिष्य राजहर्ष ने "श्री जिनकुशल सूरि अष्टोत्तर शत स्थान शुभ स्थान गर्भित स्तवन" बनाया है, जिसमें अमरसर, नवहर और रिणी के नाम मिलते हैं। बहुत संभव है कि चूरू जिले के कुछ गांव श्री जिनकुशल सूरि जी (सं. 1337–1389) के विचरण स्थल रहे हों। चूरू व चूरू जिले के कई कसबों में इनकी चरण पादुकाएं स्थापित हैं।

हंस सूरि और श्री जिनचंद्र सूरि (६) आदि आचार्य हुए, जिनमें से ३ प्रभा
शाली आचार्य तो चूरू जिले के ही थे और शेष का भी चूरू जिले से का
संपर्क रहा।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य श्री जिनराज सूरि ने
१६५६ में जिनसिंह सूरिजी से दीक्षा ली थी। इनके पट्टधर श्री जिन रत्न सू
जी चूरू जिले के ग्राम सेरूणा (त० डूंगरगढ़) के लुणिया तिलोकसी व
पत्नी तारादेवी के पुत्र थे।

श्री जिन रत्न सूरि जी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी (७) थे
सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् सम्मान्य श्री अगरचन्दजी नाहटा ने बीकानेर से पत्र द्वार
सूचित किया है कि सं. १७३७ में जिनचंद्र सूरि जी ने वा० हेमप्रमोद को चूर
जाने का आदेश दिया था। सं. १७३८ में वा० हेमप्रमोद चूरू रहे। इसके बाद
भाग्यवर्द्धनजी चूरू रहे।

श्री जिनचंद्र सूरि जी के पट्टधर श्री जिनसुख सूरि जी चूरू जिले के
ग्राम फोगपत्तन (फोगां ग्राम, त० सरदारशहर) के थे। जिनसुख सूरि जी बड़
प्रभावशाली आचार्य हुए। बीकानेर नरेश महाराजा सुजानसिंहजी (सं. १७५७
—९२) जिन सुख सूरि जी में बड़ी श्रद्धा भक्ति रखते थे। महाराजा द्वारा सूरि
जी को लिखे गये दो पत्र श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के संग्रह में हैं,[1]
जिनको देखने से ज्ञात होता है कि महाराजा उनका अत्यधिक सम्मान करते थे।
संवत् १७७६ के भाद्रवा सुदि १४ को श्री सुरि जी द्वारा फलोदी के संघ को
लिखा गया पत्र भी नाहटा जी के संग्रह में है। संभवतः सं. १७६६ में आप
विहार करते हुए जैसलमेर पधारे थे। जैसलमेर में श्री जिन कुशलसूरि जी की
... के समीप बनी हुई प्रतिशाला के लेख से इसका अनुमान होता है।

...न सुख सूरि जी सं. १७८० में देवलोक हुए जिन की चरण-
...(रिणी) के श्री शीतलनाथजी के मन्दिर में है। इसकी स्था-

...जी ने ...नेर जैन संग्रह" में प्रकाशित करवा दिये हैं।

"...श्री विक्रमादित्यराज्यात् संवत् 1769 वर्षे...महारक श्री जिनचं...
... महा सुदि...।

(६) जैन धर्म को चूरू जिले की देन

चूरू जिले के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री जिनसुखसूरिजी

पमा [illegible] पट्टधर श्री जिनभक्ति सूरि ने की।[1]

श्री जिनसुख सूरि जी के पट्टधर श्री जिन भक्ति सूरि जी चूरू जिले [illegible] ग्राम [illegible] (त० डूंगरगढ़) के थे। महराजा सुजानसिहजी इन[illegible] का बहुत सम्मान करते थे। श्री जिनकुशल सूरि स्तवन में सूरि जी ने महारा[ज] की शत्रुओं से रक्षा करने का उल्लेख किया है[2]। सुजानसिहजी के उत्तर[ा]धिकारी महाराजा जोरावरसिहजी भी इनके पूरे भक्त थे।

सं. १८०१ का एक सचित्र विज्ञप्ति पत्र बीकानेर में है जो श्री सूरि[जी] की सेवा में भेजा गया था। विज्ञप्ति लेख टिप्पणाकार है, उसके मुखपृष्ठ प[र] "श्रीमती श्री जिन भक्ति सूरि जी महाराज ने चित्रों समेत" लिखा है। विज्ञप्ति लेख ६ फीट ७।। इन्च लम्बा और ६ इंच चौड़ा है। ऊपर का ७।। इन्च का भाग खाली है, जिस में मंगलसूचक "श्री" लिखा है। शेष ५ फुट में चित्र हैं और ४ फुट में विज्ञप्ति लेख है। लेख में अन्य अनेक चित्रों के साथ महाराज बीकानेर (जोरावरसिंह जी) व जिन भक्ति सूरि जी का चित्र है। सूरि जी सिंहासन पर विराजमान हैं, पीछे चंवरधारी खड़ा है, उन के सामने स्थपना-चार्य तथा हाथ में लिखित पत्र है। वे जरी की बूंटियों वाली चद्दर ओढ़े हुए व्याख्यान देते हुए दिखलाये गये हैं। सामने तीन श्रावक, दो साध्वियां व दो श्राविकाएं हैं।

1. संवत् 1780 वर्षे शाके 1645 प्रवर्तमाने [illegible] 10 तिथौ शनिवारे भट्टारक श्री जिनसुखसूरिजी देवलोकं गताः [illegible] भट्टारक श्री जिनभक्तिसूरि [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] 1783 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

सूरि जी ने बहुत दूर दूर तक घूम कर जैन धर्म का प्रचार किया। सं. १८०४ में ये दिवंगत हुए। इनकी चरण पादुका श्री अमृतधर्म स्मृतिशाला, जैसलमेर में स्थित है, जिसका लेख निम्न है—

सं. १८०४ मिते ज्येष्ठ सुदि ४ तिथौ श्री कच्छ देशे मांडवी बिंदरे स्वर्गतानां श्री जिन भक्ति सूरीणां पादन्यास: सं. १८५२ मिते पोष सुदि ५ तिथौ कारितं श्री संघेन प्रतिष्ठितश्च वा० क्षमाकल्याण गणि भि:

श्री जिन भक्ति सूरिजी के पट्टधर श्री जिनलाभ सूरिजी और उन के पट्टधर श्री जिनचन्द्र सूरिजी (८) थे जो सं० १८५० में चूरू में सपरिकर विराजते थे।[1] चूरू से श्री अमृत गणि के नाम लिखा गया एक पत्र चूरू के सुराना पुस्तकालय में है जो निम्न है—

॥ श्री: ॥

॥ स्वस्ति श्री पार्श्वसंप्रणम्या श्री चूरू नगरा भट्टारका श्री जिनचन्द्रसूरिवरा: सपरिकरा:। श्री रिणी नगरे ॥ वा० ॥ अमृत सुंदर गणि योग्यं। अनुलभ्य। समा दिशंति।... तथा तुम्हनुं आदेश श्री फरकावाद नो छे। तत्र रहिज्यो। घणी शोभा लेज्यो। शिष्या नुं हित शिक्षा माहे राखेज्यो। श्री संघ राजी रहै तिम प्रवर्त्यज्यो। समस्त श्रावक श्राविका नु धर्म लाभ क। उत्तरा पत्र देज्यो। मितो फागुण वद १० सवत् १८५० रा।

सं० १८५० के वैशाख सुदि ३ को आपने चूरू के श्री संघ द्वारा बनवाई गई श्री जिनकुशल सूरिजी की पादुका चूरू के शान्तिनाथ मंदिर में स्थापित की जिसका लेख निम्न है—

संवत् १८५० मिते वैशाख शुक्ल ३ भृगुवासरे बृहत्खरतर गच्छे भ० यु० भ० श्री जिनकुशल सूरि पादुका चूरू श्री संघेन कारिता प्रतिष्ठितं च० जं० भ० श्री जिनचन्द्रसूरिभि:।

माघ शुक्ला ५ सं० १८५० को चूरू की दादावाड़ी में श्री जिनकुशल सूरिजी और सं० १८५१ वैशाख सुदि ३ को श्री जिनदत्त सूरिजी की चरण पादुका स्थापित की[2] गई। आप के पट्टधर श्री जिन हर्ष सूरिजी भी चूरू

---

[1] सम्मान्य श्री अगरचन्दजी नाहटा ने बीकानेर से सूचित किया है कि संवत् 1844 के वैशाख मास में भी श्री जिनचन्द्र सूरिजी चूरू में थे।

[2] सं० 1850 मिते माघ शुक्ला 5 श्री जिनकुशल सूरि पादुके कारिते वा० चारित्र प्रमोद गणिना प्रतिष्ठिते च॥ श्री बृहत्खरतर गच्छे। भ। जं। यु। भ। श्री जिनचन्द्रसूरिभि:।

॥संवत् 1851 वर्षे वैशाख सुदि 3 तिथौ शुक्रे श्रीमत् श्री जिनदत्तसूरि सुगुरूणां चरणांबुजे सकलसंघेन विन्यमिते प्रतिष्ठिते च। भ। श्री जिनचन्द्रसूरिभि: श्री चूरू नगरमध्ये शुभं भवतुतरामिति॥

पधारे। सं० १८६५ में जयराज गणि के शिष्य चारित्र प्रमोद गणि ने माघ सुदि ५ को अपने गुरु की पादुका श्री जिनहर्ष सूरिजी से प्रतिष्ठा करवा कर दादावाड़ी में स्थापित की। इसी प्रकार सं० १८९१ में श्री सागरचन्द्र शाखा के श्री चन्द्रविजय मुनि की पादुका गुण प्रमोद मुनि ने और चारित्र प्रमोद गणि की पादुका उन के शिष्य कीर्ति समुद्र मुनि ने श्री जिनहर्ष सूरिजी से प्रतिष्ठापित करवाईं। श्री जिनहर्ष सूरिजी के पट्टधर श्री जिनसौभाग्य सूरिजी भी चूरू पधारे (संभवतः यहां के शान्तिनाथ मंदिर में संवत् १९०५में आपने बिंब प्रतिष्ठा

श्री जिन भक्ति सूरि

को[1] और सं० १६१० में श्री जिनदत्तसूरिजी की पादुका स्थापित की)।

आप के पट्टधर श्री जिनहंस सूरिजी सं० १६१६ में बीकानेर से चल कर कई ग्रामों में होते हुए राजगढ़ पधारे थे। राजगढ़ (चूरू जिले का एक क़सबा) के सुपार्श्वनाथजी के मंदिर के भित्ती लेख में उस यात्रा का कुछ वर्णन अंकित है; जिसे पढने से उस समय की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

सं० १६१६ रा मिती मिगसर सुदि ३ दिने। जं० यु० प्र० भट्टारक बृहत्खरतर गच्छे वर्तमान भ। श्री जिनहंस सूरिश्वरा: स परिकरा: श्री बीकानेर सुं विहारो ग्रामा नु ग्राम वंदावो। श्री सरदारशहर बड़ोपल हनुमानगढ टीबी खड़ियाला राणिया सरसा नोहर भादरा राजगढ श्री जी महाराज पधार्या संवत् १६२० रा० मि० वैसा० सुद ६ श्री संघ हाकम कोचर मुंहता श्री फतेचन्दजी कालूराम जी बेड़े हंगाम सुं नगारो नीसाण घोड़ा प्रमुख इसदी आदि देकर सामेलो कीयो श्री साधु साथे विहार में वा० नन्दरामजी गणि पं० प्र० चिमनीरामजी आदेशी पं० प्र० देवराजजी मुनि पं० प्र० भासकरणजी मुनि पं० प्र० रुघजी मुनि राजसुख जी पं० प्र० लछमणजी गणि पं० गोपीजी मुनि पं० हीरोजी पं० प्र० केवलजी मुनि पं० प्र० शिवलाल मुनि पं० प्र० अवीरजी मुनि पं० प्र० गुलाबजी वा० बुधजी ठा० १ पं० हिमत् मुनि पं० गुमान श्री राहसरीयो पं० सोमो पं० रुघलो पं० सुगणानन्द पं० वनोजी चिरं मदासुख चि० बींझो ठाणे ४१ साधु सर्व ...पं० प्र० कचरमल्ल मुनि महाराज के साथ आदमी प्यादल रथ १ चपरासी हलकारे राजरो पोरो १ छड़ो छड़ीदार सेवग सुगणो चांदी री छडी १ सेवग बारोदार चोथूजी विरधो नाइ २ नवलो मुलतानो दरजी... तिनतस संवत् १६२० दीक्षा महोच्छव साधु २ योनें मि० वै० सुद १० दिन भई वणारस पं० ...मि० वै० सु० १३ राजगढ में खमासण ७ मिठाई ४ सीरे री ३ लूदीवास में १ मि० जेठ वदी ३ दिने रिणी नें विहार कर्यो सतरभेदी पूजा हुई मि० जे० व० २ नव अंगी ७ पं० प्र० चीमनीरामजी पं० ...मुजमानी ११ भेट भई बेगार ऊंठ २५।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि राज्य की ओर से भी जैन आचार्यों को पूर्ण सम्मान प्राप्त था और राज्य सरकार उन की सुख सुविधा का ध्यान रखती थी। जब जैन आचार्य किसी क़सबे में पधारते तो स्थानीय हाकिम पूरे लवाजमे के साथ उन की अगवानी को जाते थे। आचार्य गण पूरे परिकर सहित यात्रा करते थे। दीक्षाएं समारोह पूर्वक होती थी। राजगढ़ में लगभग

1. सं० 1905 वर्षे वैशाख मासे पूर्णिमास्यां तिथौ श्री मुनिसुव्रतजिन बिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं, बृहत्खरतरगच्छेश जं० यु० प्र० भ० श्री जिनसौभाग्यसूरिभिः।

२० दिन तक ठहरनें के बाद संघ नें रिणी की तरफ प्रस्थान किया और संभवतः चूरू जिले के सभी प्रमुख स्थानों में पहुँचा होगा। संवत् १९३३ में श्री जिनहंस सूरि जी के चूरू पधारने का उल्लेख प्राप्त है। इस वर्ष माघ सुदि ५ को मुनि आनंदसोम ने श्री यशराज मुनि की पादुका श्रीजिनहंस सूरिजी से प्रतिष्ठापित करवाई[1]। आप के पट्टधर श्री जिनचन्द्र सूरि जी (९) सं० १९४० में चूरू पधारे और आपने दादाबाड़ी में चरण पांदुका स्थापित की[2]। इस प्रकार यह क्षेत्र जैन आचार्यों, श्री पूज्यों, भट्टारकों, यतियों और सन्तों का विचरण स्थल बना रहा।

चूरू में खरतर गच्छ का बड़ा उपाश्रय, श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर और दादाबाड़ी है। इन का निर्माण समय तो अज्ञात है, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सं० १८३९ से पूर्व उपाश्रय या मन्दिर का निर्माण हो चुका था।[3] मन्दिर में मूल नायक श्री शान्तिनाथजी की मकराने की मूर्ति बड़ी भव्य है जिस पर संवत् १६८७ वैशाख शुक्ला ३ का लेख है—

संवत् १६८७ वैशाख शुक्ला ३...श्री विजयसेन सूरि पट्टालंकार तपाविरुद धारक भट्टारक विजयदेवसूरिभि: आचार्य श्री विजयसिंहसूरि...सुपरैकारितं।

मकराने की २ अन्य मूर्तियां हैं जिन की बिम्ब प्रतिष्ठा सं० १९०५ में हुई है। धातु प्रतिमाओं पर सं० १५०३ से सं० १८२६ तक के लेख हैं। आलों में २ चरण पादुकाएं स्थापित हैं, जिन पर सं०१८५० और१९१० के लेख हैं। मन्दिर पुराना है, लेकिन इस का सांगोपांग जीर्णोद्धार यतिवर्य ऋद्धिकरणजी ने बड़ी धन राशि व्यय कर के सं०१९८१से ८६तक बहुत सुन्दर करवाया है। मन्दिर में बहुत आकर्षक और कलापूर्ण सुनहरी चित्रकारी करवाई गई है, जो अत्यंत नयनाभिराम है। जीर्णोद्धार का लेख निम्न है—

---

1. सं० 1933 मिति माघ सुदि 5 भृगुवासरे श्री बृहत्खरतर गच्छे पं० प्र० श्री यशराजजी मुनिना पादुके श्री चूरू पं० आणंदसोमेन कारितं प्रतिष्ठितं च। भ। जं। भ। श्री जिनहंससूरिभि: शुभं
2. सं०त् 1940 वर्षे शाके 1805 मिति वैशाख मासे शुक्ल पक्षे 3 तृतीयायां तिथौ बुधवासरे भ। यं। दादाजी श्री जिनचन्द्रसूरिजी चरण पादुका भ। श्री जिनचन्द्रसूरिभि: प्रतिष्ठितः श्री संघेन कारापिता॥
3. [illegible]श्रय के ग्रन्थ भण्डार में गुरुजी जैन श्री चतुरभुजजी विसनदासजी के नाम का एक पत्र है जो राजगढ़ के मांडिया ने उन के नाम आसोज सुदि 3 सं० 1839 को लिखा है। इस से अनुमान होता है कि उक्त समय से पूर्व चूरू में उपाश्रय और मन्दिर बन चुके थे। चूरू ठाकुर स्योजीसिंह (सं० 1840-71) के समय में यति चतुरभुजजी को 101 बीघा जमीन दी गई थी, जिस का पट्टा चूरू के खालसा हो जाने पर सं० 1877 में बीकानेर राज्य की ओर से बना था, जिसका कागज उपाश्रय के ग्रन्थ भण्डार में है।

अस्य देवालयस्य जीर्णोद्धार कारापिता पं० प्र० श्रीमन्तो यतिवरा ऋद्धकरण नाम धेया महोदया । सन्ति ॥ यह धार्मिक महान् कार्य आप के ही प्रयत्न से हुआ है यह जीर्णोद्धार सं० १९८१ से प्रारम्भ हो कर सं० १९८९ तक समाप्त हुआ है।
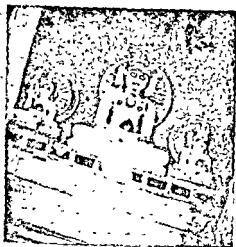
चूरू में मूल नायक श्री शांतिनाथजी की भव्य प्रतिमा

मन्दिर के गर्भगृह का द्वार चांदी का बना है, जिसपर सं० १९८५ का लेख है। मन्दिर से संलग्न बड़ा उपाश्रय है जिस में यतिजी स्वयं एक आयुर्वेदीय औषधालय का संचालन करते थे और एक संस्कृत पाठशाला भी चलती थी। औषधालय तो अभी भी चल रहा है। उपाश्रय में एक ग्रंथ भण्डार है जिस में प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त हस्तलिखित[1] ग्रंथों और पट्टावलियों आदि का अच्छा संग्रह है।

---

1. हस्त लिखित ग्रन्थों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं—(1) वचनिका राठोड़ राउ महेसदासोतरी (सं० 1794), (2) महाराजा रतन महेंसदासोतरी वचनिका खेड़िया जागारी कही,(सं०1774) (3) अमृतवेलि (सं० 1724) (4) चन्दनमलयागिरि (सचित्र, सं० 1741), (5) बीकानेर की गजल (सं० 1765)।

लौंकागच्छ की पट्टावली में लिखा है कि जीवणदासजी ने ही सं. १७७८ में बीकानेर के तत्कालीन महाराजा से बीकानेर के दोनों उपाश्रयों का परवाना प्राप्त किया। सं १७८४ के आस-पास बीकानेर के महाराजा सुजाणसिंहजी को रमोली हो गई थी, औषधोपचार से ठीक न होने पर श्री पूज्यजी भटनेर से बुलाये गये और उन्हों ने मंत्रित भस्म दी, जिससे वे रोगमुक्त हो गये।

चूरू में लौंकागच्छ का उपाश्रय लगभग २०० वर्ष पूर्व बना होगा। इस उपाश्रय में यति ज्ञानचन्दजी, परमानन्दजी, टीकमचंदजी, वनेचंदजी, हीरालाल जी, रावतमलजी और जोधराज जी (वर्तमान) के नाम ज्ञात हैं। यति रावतमल जी पूलासर (जिला चूरू, त० सरदारशहर) के पारीक ब्राह्मण थे और बड़े योग्य, विद्वान् और कुशल चिकित्सक थे। यति जोधराज जी का जन्म सीस्यूं राणोली (जयपुर) के खंडेलवाल ब्राह्मण परिवार में हुआ। यतिजी ने बतलाया कि खरतरगच्छ उपाश्रय के यति ऋद्धिकरण जी एक बार सीकर रावराजा जी के आमंत्रण पर सीकर गये थे। हम सब १२ भाई थे और सब के सब बीमार थे। मेरी माताजी ने यति जी से कहा कि आप इन बालकों को नीरोग कर दें तो मैं एक बालक को आपका शिष्य बना दूंगी। यति जी ने हम सब को नीरोग कर दिया और मेरी माताजी ने मुझे यति जी को सौंप दिया। उस वक्त मेरी अवस्था ५ साल की थी। संवत् १९६१ में मैं उनके साथ चूरू आया, लेकिन सं. १९७६ में लौंकागच्छ के उपाश्रय में आ गया। यति जोधराज जी ने अभी शिष्य रूप में किसी को दीक्षित नहीं किया है। उपाश्रय में प्रकाशित व हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह है।[1]

बांठियों का उपाश्रय-

चूरू में एक अन्य उपाश्रय भी रहा है जो बांठियों के उपाश्रय के नाम से जाना जाता है। यह कटला बाजार में बिड़ला घंटाघर के निकट दक्षिण की ओर है। यति जोधराजजी ने बतलाया कि यह पार्श्वचंदगच्छ का उपाश्रय था। लेकिन अब इस में कोई यति नहीं है।

---

1. ग्रंथ भंडार में कुछ हस्त लिखित प्रतियां हैं जैसे-
   (1) विक्रम प्रदीप सं० 1657 (पत्र 70)।
   (2) कल्पलता कृता कल्प सूत्र सं० 1724 (पत्र 197)।
   (3) सुन्दर सिंगार संवत् 1797 की प्रति जो चूरू में लिखी गई है, इसमें 34 पत्र हैं, पुष्पिका
   इति श्री सुंदर सिंगार कवि सुंदर कृत संपूर्ण समाप्तं ॥
   संवत् १७९७ मिती मगसर सुदि ६ श्री चूरू मध्ये ॥
   लिपतं मयेन (भावादासेन्) ॥ पठनार्थं महणोत सगतसिंघ ॥

दादबाड़ी नगर के पश्चिमी भाग में जौहरी सागर तालाब के निकट है। जतीजी के बगीचे के नाम से इसकी ख्याति है। बगीचे में शिवजी और हनुमानजी के दो पुराने छोटे देवालय हैं। भूतपूर्व बीकानेर राज्य की ओर से पूजा के लिए चूरू परगने के प्रत्येक गांव से आठ आना वार्षिक बंधे हुए थे।[1]

बगीचे में यति ऋद्धिकरण जी की मकराने की छत्री है, जिस में कार्तिक शुक्ला ११ सोमवार सं० २०००.को उन की चरण पादुका स्थापित की हुई है। इसी तिथि को स्थापित श्री चिमनीरामजी व उन के गुरु भाई डूंगरमलजी की पादुकाएं भी हैं। यति ऋद्धिकरणजी के एक गुरु भाई जैनाचार्य भट्टारक श्री जिनऋद्धिसूरीश्वर (श्री चिमनीरामजी के शिष्य), सं० २००० में चूरू आये थे। संभवत: उन्हीं के द्वारा ये चरण पादुकाएं प्रतिष्ठापित हुई हों। बगीचे में सं० १८५० में श्री जिनकुशलसूरिजी व संवत् १८५१ में श्री जिनदत्तसूरिजो की पादुकाएं स्थापित हैं। अन्य भी अनेक पादुकाएं स्थापित हैं,जिन में सभी पर लेख उत्कीर्ण हैं। चरण पादुकाओं से गुणप्रमोद. कीर्तिसुन्दर. यशराज,आनन्दसोम, राजशेखर, ज्ञानानंद,उदयभक्ति आदि यतियों के नाम ज्ञात होते हैं। एक पादुका वि० सं० १८७१ की कोचर उदयचंद के पौत्र और गोकुलचन्द के पुत्र मोहता कोचर मगनोराम की है। बगीचा बहुत बड़ा है और उस में काफी मकान हैं, लेकिन अधिकतर निर्माण यति ऋद्धिकरणजी के समय में ही हुआ है।

वृहत्खरतरगच्छ की इस गद्दी में ईसरीचन्द जी, खेमचन्दजी और जीवणरामजी हुए जिनकी शिष्य परंपरा में पूनमचन्दजी, चिमनीराजी तथा डूंगरमलजो तीन गुरु भाई हुए। पूनमचन्दजी के शिष्य यति ऋद्धिकरणजी बड़े प्रभावशाली यति हुए। यतिजी की धर्मशास्त्र, व्याकरण, काव्य और संगीत में काफी रूचि थी। वे यंत्र मंत्र और ज्योतिष के ज्ञाता थे।

यतिजी की सब से अधिक प्रसिद्धी एक अत्यंत कुशल चिकित्सक के रूप में है। आपने अनेक असाध्य रोगियों को आरोग्य प्रदान किया। आप की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी और आप चिकित्सा करने के लिए कलकत्ता, बम्बई तक जाते थे। आप के वैद्यक विषयक चमत्कारों के सैंकड़ों संस्म

1. उपाश्रय के ज्ञान भण्डार में इस का मुहर छाप का कागज है जो निम्न है—
॥ श्री दीवान वचनात् चूरू रै परगनै रै गावा रा भोगता चोधरियों रांन मजकुर [illegible] चूरू में देहरा श्री सदासिवजी श्री हनूमानजी रा मींदर वा दादाजी श्री जिन [illegible]गुरुजी री छतड़ी पगलिया छै तैरी सेवा बिरामण करसी चनण केसर धूप धान बंदगी [illegible] नै गांव 1) रु० ॥) अखरे आना ॥) कर दीना छै सु मालीगा मदामद दिया जा[illegible] [illegible] में कसर मत घालज्यो दः नाहटा मदो सं० 1877 मिती आषाढ़ बदी 4।

आज भी लोगों की जुबान पर हैं। आप की यति दीक्षा वि० सं० १९४८ फाल्गुन शुक्ला २ को चूरू में हुई और स्वर्गवास चैत्र वदि २ सं० १९९५ को हुआ।

यतिजी ने मन्दिर की जायदाद का एक ट्रस्ट सन् १९२९ को ८ जुलाई को बना दिया, जिस के सभापति सेठ चंपालालजी कोठारी थे। यतिजी के वसीयत नामे से ज्ञात होता है कि रामगढ़ और सीकर (शेखावाटी) में भी उक्त मंदिर की जायदाद हैं। रामगढ में एक उपासरा और एक हवेली तथा सीकर में उपासरा, छतरी, कुआं और कुएं की जमीन बहवे पट्टा सं० १८९१ है।

उपरोक्त चिमनीरामजी के शिष्य ब्राह्मण ज्ञाति रामकुमारजी थे, जिन की यति दीक्षा भी चूरू में ही फाल्गुन शुक्ला २ सं० १९४८ को हुई थी। लेकिन इन की रुचि तीर्थ दर्शन को थी और ये घूमते २ किसी प्रकार शत्रुंजय तीर्थ पर पहुँच गये। वहां इन का साक्षात्कार खरतर गच्छीय क्रिया उद्धारक एवं प्रभावक मुनि श्री मोहनलालजी से हुआ और इन्होंने आषाढ सुदि ६ सं० १९४९ को पालिताना में उन से संवेगी दीक्षा ग्रहण की। मुनि मोहनलालजी ने अपने शिष्य यशोमुनिजी के शिष्य के रूप में इन का नाम ऋद्धिमुनि रक्खा। ऋद्धिमुनि ने खूब अध्ययन किया और उच्च कोटि के विद्वान् बन गये। संवत् १९६६ में यशोमुनि जी ने आपको तथा दो अन्य मुनियों (गुमानमुनि-केशरमुनि) को ग्वालियर में पंन्यास पदवी दी। सिंधिया नरेश के खजांची श्री नथमल गोलेछा ने आठ दिनों तक बड़े ठाट-बाट से महोत्सव करवाया। इस के बाद पंन्यासजी जयपुर पहुँचे। वहां इन्होंने एक साथ ८१ आयंबील की तपस्या की। वहां बड़ा महोत्सव हुआ, जिस में चूरू से यति ऋद्धिकरण जी भी गये।

ऋद्धिमुनिजी बड़े तपस्वी थे और जप, ध्यान तथा साधना में निमग्न रहते थे। संवत् १९९५ फागुन सुदि ५ को ठाणा नगर में जैन संघ ने आप को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। ठाणा में जो विशाल और अति ... विशिष्ट जैन मन्दिर बना, उस का श्रेय आप को ही है। आपने पाय धुनि के श्री महावीरजी मदिर में श्री घंटाकर्णजी की स्थापना की। आपने जैन धर्म के उत्थान और सार्वजनिक हित के लिए खूब काम किया। मुनि श्री गुलाब मुनि जी ने आप से संवेगी दीक्षा ग्रहण की और उन्होंने ही गुजराती में "श्री जिनऋद्धिसूरि जीवन प्रभा" नाम से आपका जीवन चरित्र प्रकाशित किया। चूरू में भी आप एक बार सं० २००० में पधारे और तभी आपने शायद दादाबाड़ी में अपने दीक्षा गुरु चिमनीराम जी, डूंगरमलजी और ... की पादुकाएं प्रतिष्ठापित कीं। चूरू के इस मनस्वी यति ने समूचे गुजरात में प्रतिष्ठा प्राप्त की और चूरू के नाम को उजागर किया।

चूरू जिले के आधुनिक जैन मंदिरों में सुजानगढ़ का देवसागर जिनालय बड़ा भव्य है। स्व०डा० वासुदेव शरणजी अग्रवाल ने इस देवसागर प्रासाद की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इसे वास्तु प्रासाद का सविशेष उदाहरण बतलाया है। इस की प्रतिष्ठा सं० १९७१ माघ सुदि १३ को श्री जिनचारित्र सूरिजी ने की। इस अवसर पर अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस का नवां अधिवेशन भी सुजानगढ़ में बड़ी धूमधाम से मनाया गया जो लगातार ३० दिन तक चला और जिस में दूर-दूर से सैंकड़ों विद्वान् और प्रतिष्ठित व्यक्ति पधारे। मन्दिर के निर्माण में उस वक्त लगभग ४लाख रुपये फर्म 'जेसराज गिरधारीलाल' से लगे थे। मन्दिर के संचालन के लिए ट्रस्ट बना हुआ है, ट्रस्ट के द्वारा आयुर्वेदिक दातव्य चिकित्सालय, पुस्तकालय आदि चलाये जाते हैं।

लौंकागच्छ:—

लौंकमत की स्थापना लौंकाशाह ने विक्रम की १६ वीं शताब्दी में की। सं० १५३१ (कुछ के अनुसार सं० १५३३) में अहमदाबाद में लौंकाशाह से एक साथ ४५ व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण की और तभी से उन के गच्छ का नाम लौंका गच्छ पडा,[1] जिस की आगे चल कर कई स्थानों में शाखाएं स्थापित हुईं। नागौरी लौंका गच्छ के संस्थापक हरिगररूपजी सं० १५८६ में बीकानेर गये और तब से बीकानेर में इस गच्छ का पर्याप्त प्रभाव बढ़ा।

इस गच्छ के आचार्य कल्याणदासजी राजलदेसर (जिला चूरू) के सुराणा शिवदासजी की पत्नी कुशलाजी के पुत्र थे और बीकानेर में दीक्षित हुए थे। कल्याणदास जी व नेमिदास जी की दीक्षा और वर्द्धमान जी का प्रवेशोत्सव संवत् १७३० वैशाख सुदि १ को बीकानेर में बड़ी धूम-धाम से हुआ। इसी गच्छ के आचार्य जीवणदासजी पड़िहारा (जिला चूरू) के चोरड़िया वीरपाल की पत्नी रत्नादेवी के पुत्र थे। सं० १७६६ में जीवणदासजी का प्रवेशोत्सव बीकानेर में सुराणों और चोरड़ियों ने बड़े समारोह से किया था।

[1] लौंकाशाह के अनुयायियों में आगे चलकर लवजी मुनि हुए जिन्होंने सं० 1709 में ढूंढिया सम्प्रदाय का उद्भव किया। इस सम्प्रदाय की एक शाखा के आचार्य धर्मदासजी (वि० सं० 1716 में दीक्षित) हुए, उनके निन्यानवे शिष्य हुए। धर्मदासजी के दिवंगत होने पर वे सब बाईस शाखाओं में विभक्त हो गये जिस के फलस्वरूप उनकी शिष्य परम्परा 'बाईसटोला' नाम से प्रसिद्ध हुई। बाईसटोला सम्प्रदाय का भी यहां काफी प्रभाव रहा है। जब इस सम्प्रदाय के मुनि स्थानकों में रहने लगे तो उनके लिए 'स्थानकवासी' नाम प्रयुक्त होने लगा। इसी स्थानकवासी सम्प्रदाय में से तेरा पंथ का उद्भव हुआ।

लौंकागच्छ को पट्टावली में लिखा है कि जीवणदासजी ने ही सं. १७७८ में बीकानेर के तत्कालीन महाराजा से बीकानेर के दोनों उपाश्रयों का परवाना प्राप्त किया। सं १७८४ के आस-पास बीकानेर के महाराजा सुजाणसिंहजी को रसोली हो गई थी, औषधोपचार से ठीक न होने पर श्री पूज्यजी भटनेर से बुलाये गये और उन्हों ने मंत्रित भस्म दी, जिससे वे रोगमुक्त हो गये।

चूरू में लौंकागच्छ का उपाश्रय लगभग २०० वर्ष पूर्व बना होगा। इस उपाश्रय में यति ज्ञानचन्दजी, परमानन्दजी, टीकमचंदजी, बनेचंदजी, हीरालाल जी, रावतमलजी और जोधराज जी (वर्तमान) के नाम ज्ञात हैं। यति रावतमल जी पूलासर (जिला चूरू, त० सरदारशहर) के पारीक ब्राह्मण थे और बड़े योग्य, विद्वान् और कुशल चिकित्सक थे। यति जोधराज जी का जन्म सीस्यूं राणोली (जयपुर) के खंडेलवाल ब्राह्मण परिवार में हुआ। यतिजी ने बतलाया कि खरतरगच्छ उपाश्रय के यति ऋद्धिकरण जी एक बार सीकर रावराजा जी के आमंत्रण पर सीकर गये थे। हम सब १२ भाई थे और सब के सब बीमार थे। मेरी माताजी ने यति जी से कहा कि आप इन बालकों को नीरोग कर दें तो मैं एक बालक को आपका शिष्य बना दूंगी। यति जी ने हम सब को नीरोग कर दिया और मेरी माताजी ने मुझे यति जी को सौंप दिया। उस वक्त मेरी अवस्था ५ साल की थी। संवत् १९६१ में मैं उनके साथ चूरू आया, लेकिन सं. १९७६ में लौंकागच्छ के उपाश्रय में आ गया। यति जोधराज जी ने अभी शिष्य रूप में किसी को दीक्षित नहीं किया है। उपाश्रय में प्रकाशित व हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह है।[1]

बांठियों का उपाश्रय-

चूरू में एक अन्य उपाश्रय भी रहा है जो बांठियों के उपाश्रय के नाम से जाना जाता है। यह कटला बाजार में बिड़ला घंटाघर के निकट दक्षिण की ओर है। यति जोधराज जी ने बतलाया कि यह पायचंदगच्छ का उपाश्रय था। अब इस में कोई यति नहीं है।

1. ग्रंथ भंडार में कुछ हस्त लिखित प्रतियां हैं जैसे-
   (1) विहल प्रदीप सं० 1657 (पत्र 70)।
   (2) कल्पलता कृता कल्प सूत्र सं० 1724 (पत्र 197)।
   (3) सुन्दर सिंगार संवत् 1797 की प्रति जो चूरू में लिखी गई है, इसमें 34 पत्र है, पुष्पिका
   इति श्री सुंदर सिंगार कवि सुंदर कृत संपूर्ण समाप्तं ॥
   संवत् १७९७ मिती मगसर सुदि ९ श्री चूरू मध्ये ॥
   लिपतं मथेन (मावादासेन) ॥ पठनार्थं महणोत सगतसिंघ ॥

दिगम्बर सम्प्रदाय—

वीर निर्वाण ६०९ (ई. सन् ८३) में जैन श्रमण संघ दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में बंट गया। श्वेताम्बर की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय में भी अनेक शाखाएं हुई। लकड़ी की मूर्ति बनाने तथा चिकनी चीजों से उस का अभिषेक करने आदि को लेकर काष्ठा संघ बना। अरहन्तदेव, शास्त्र और साधु के साथ शासनदेवों की स्तुति नहीं करना, इस बात को लेकर त्रिस्तुतिक सम्प्रदाय बना। १६वीं शताब्दी में मूर्ति पुजा विरोधी सम्प्रदाय तारण पंथ के नाम से खड़ा हुआ, इसने मूर्ति के बदले वेदी पर शास्त्र विराजमान किये और उन्हीं के दर्शन पूजन को महत्त्व दिया। तेरापंथ और बीस पंथ बने। लेकिन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के वर्तमान तेरापंथ से यह तेरापंथ सर्वथा भिन्न है।

चूरू जिले में दिगम्बर सम्प्रदाय का भी काफी प्रभाव रहा है। यद्यपि जैन धर्म जन्मगत जाति को महत्त्व नहीं देता और इसलिये चारों वर्णों के लोग जैन धर्म में दीक्षित होते रहे हैं, फिर भी चूरू जिले में दिगम्बर मतावलम्वी अधिकतर अग्रवाल और श्वेताम्बर मतावलम्वी ओसवाल हैं। चूरू नगर में ४० घर दिगम्बर जैन मतावलम्वी श्रावकों (सरावगियों) के हैं जो सभी अग्रवाल हैं, लेकिन उनके सम्बन्ध हिन्दू धर्मावलम्बी अग्रवालों में बराबर होते हैं। दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार प्रसार में अग्रवाल जैनियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

मैनपुरी में चन्द्रप्रभु की प्रतिमा के सं. १२३४ कातिक सुदि १ के लेख में अग्रवाल जाति का उल्लेख है। बीकानेर के दिगम्बर जैन मन्दिर के संवत् १५६२ के लेख में भी 'अग्रोत मीतन' (मीनल) गोत्र का उल्लेख है। दिल्ली (योगिनीपुर) के नट्टल साहू अग्रवाल थे, जिन्होंने दिल्ली में आदिनाथ का प्रसिद्ध जैन मंदिर बनवाया था। इन्होंने कवि श्रीधर को प्रेरणा देकर 'पासणाह चरिउ" नामक सरस खण्ड काव्य लिखवाया था जो ११८९ अगहन वदि अष्टमी को पूरा हुआ था। यहां यह स्मरणीय है कि कवि श्रीधर स्वयं अग्रवाल थे। फीरोजाबाद के गर्ग गोत्री साहू खेतल ने गिरनार की यात्रा का यात्रोत्सव ‍‍१ था। उसके पुत्र फेरू ने अपनी धर्मपत्नी के कहने पर मूलाचार नामक पंचमी के निमित्त लिखवाकर तपस्वी मलयकीर्ति को अर्पित किया था र के विद्वानों के लिए बड़ा उपयोगी है। अग्रवाल हेमराज ने दिल्ली ९तदेव का चैत्यालय बनवाया और भट्टारक यशकीर्ति से पाण्डव पुराण वि. सं. १४९७ में लिखवाया।

ने तो अग्रवाल श्रावकों की प्रेरणा से अनेक ग्रंथों की रचना वि. सं. १४५० से १५४६ तक कूता गया है। इन्होंने अनेक

ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें से ३० का पता लग चुका है। कवि रइधू को सम्पूर्ण साहित्य साधना का श्रेय अग्रवाल श्रावकों को ही है। रइधू के उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि मध्यकाल में जैन धर्म, साहित्य, मूर्ति एवं मन्दिर निर्माण कला आदि के क्षेत्र में अग्रवालों का ही प्रमुत्व रहा।

जैन संस्कृति के प्रचार और प्रसार में केवल श्रावकों ने ही योग नहीं दिया बल्कि अग्रवाल जैन कवियों और साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं द्वारा लोक कल्याण की भावनाओं को प्रोत्साहन दिया, जैसे बंसल गोत्री कवि भगवतीदास ने। इनकी अनेक कृतियां उपलब्ध हैं, जिनमें से कुछ तो इतनी बडी हैं जो स्वयं एक ग्रंथ का रूप ले लेती हैं। अनेक फुटकर रचनाएं हैं। इनकी तीस से ऊपर फुटकर रचनाएं तो अजमेर के एक गुच्छक में संगृहीत हैं। इसी प्रकार अनेक अन्य कवि है जैसे श्रीधर, सधारू, बुधवीस, पृथ्वीपाल, नन्दलाल, रूपचन्द, माऊ, जगजीवन, बसीदास, हेमराज, बुलाकीदास, दरिगहमल, द्यानतराय, बालीलाल, जगतराय, सन्तलाल आदि।

चूरू के अनेक अग्रवाल श्रावकों ने भी इस दिशा में बडा काम किया है। चूरू के मोहनरामजी सरावगी दिगम्बर जैन सिद्धांत के मानने वाले थे जो बाद में मुर्शि जा कर बस गये। इनके पुत्र माणकचन्दजी की धर्मपत्नी बड़ी सुयोग्या एवं दानशीला थीं, जो रानी कहलाईं। इन की सन्तान रानी वालों के नाम से प्रसिद्ध हुई। माणकचन्दजी के ७ पुत्र हरसुखराय, अमोलकचन्द, अमृतराम, फूलचन्द, चम्पालाल, अमृतलाल और भूरामल हुए। अमोलकचन्द जी ने बडी धन राशि व्यय करके मुर्शि में शिखरबंद मंदिर बनवाये जिनमें स्वर्ण की चित्रकारी बडी कलापूर्ण है[1]। रा०ब० चम्पालालजी ने ब्यावर में एक सुन्दर नशियां बनवाई, जिस में बगीचा तथा ऊंची कुर्सी का एक विशाल जिन भवन है। भारतवर्षीय दि०जैन महाविद्यालय भी इस नशियां में चालू है। फूलचन्दजी

[1] इम्पीरियल गैजेटियर ऑफ इंडिया जिल्द 15, पृ. 297 पर मुर्शि के संबंध में जानकारी देते हुए लिखा गया है—

The principal inhabitants are Kheshgi Pathans and Churuwala banias, the latter who are Jain by religion, are an enterprising and wealthy class, carrying on banking all over India and taking a leading share in the trade of the place. Thirty years ago they built a magnificent domed temple, which cost more than a lakh and is adorned with a profusion of stone carving of fine execution. The interior is a maze of gold and colour, the vault of the dome being painted and decorated in the most florid style of indigenous art.

दिगम्बर सम्प्रदाय—

वीर निर्वाण ६०६ (ई. सन् ८३) में जैन श्रमण संघ दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में बंट गया। श्वेताम्बर की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय में भी अनेक शाखाएं हुईं। लकड़ी की मूर्ति बनाने तथा चिकनी चीजों से उस का अभिषेक करने आदि को लेकर काष्ठा संघ बना। अरहन्तदेव, शास्त्र और साधु के साथ शासनदेवों की स्तुति नहीं करना, इस बात को लेकर त्रिस्तुतिक सम्प्रदाय बना। १६वीं शताब्दी में मूर्ति पूजा विरोधी सम्प्रदाय तारण पंथ के नाम से खड़ा हुआ, इसने मूर्ति के बदले वेदी पर शास्त्र विराजमान किये और उन्हीं के दर्शन पूजन को महत्त्व दिया। तेरापंथ और बीस पंथ बने। लेकिन श्वेताम्वर सम्प्रदाय के वर्तमान तेरापंथ से यह तेरापंथ सर्वथा भिन्न है।

चूरू जिले में दिगम्बर सम्प्रदाय का भी काफी प्रभाव रहा है। यद्यपि जैन धर्म जन्मगत जाति को महत्त्व नहीं देता और इसलिये चारों वर्णों के लोग जैन धर्म में दीक्षित होते रहे हैं, फिर भी चूरू जिले में दिगम्बर मतावलम्बी अधिकतर अग्रवाल और श्वेताम्बर मतावलम्बी ओसवाल हैं। चूरू नगर में ४० घर दिगम्बर जैन मतावलम्बी श्रावकों (सरावगियों) के हैं जो सभी अग्रवाल हैं, लेकिन उनके सम्बन्ध हिन्दू धर्मावलम्बी अग्रवालों में बराबर होते हैं। दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार प्रसार में अग्रवाल जैनियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

मैनपुरी में चन्द्रप्रभु की प्रतिमा के सं. १२३४ कार्तिक सुदि १ के लेख में अग्रवाल जाति का उल्लेख है। बीकानेर के दिगम्बर जैन मन्दिर के संवत १५६२ के लेख में भी 'अग्रोत मीतन' (मीतल) गोत्र का उल्लेख है। दिल्ली (योगिनीपुर) के नट्टल साहू अग्रवाल थे, जिन्होंने दिल्ली में आदिनाथ का प्रसिद्ध जैन मंदिर बनवाया था। इन्होंने कवि श्रीधर को प्रेरणा देकर 'पासणाह चरिउ" नामक सरस खण्ड काव्य लिखवाया था जो ११८९ अगहन वदि अष्टमी को पूरा हुआ था। यहां यह स्मरणीय है कि कवि श्रीधर स्वयं अग्रवाल थे। फीरोजाबाद के गर्ग गोत्री साहू खेतल ने गिरनार की यात्रा का यात्रोत्सव किया था। उसके पुत्र फेरू ने अपनी धर्मपत्नी के कहने पर मूलाचार नामक ग्रथ श्रुत पंचमी के निमित्त लिखवाकर तपस्वी मलयकीर्ति को अर्पित किया था जो इतिहास के विद्वानों के लिए बड़ा उपयोगी है। अग्रवाल हेमराज ने दिल्ली में अरहंतदेव का चैत्यालय बनवाया और भट्टारक यशकीर्ति से पाण्डव पुराण वि. सं. १४९७ में लिखवाया।

कवि रइधू ने तो अग्रवाल श्रावकों की प्रेरणा से अनेक ग्रंथों की रचना की। इनका समय वि. सं. १४५० से १५४६ तक कूता गया है। इन्होंने अनेक

न्थों का प्रणयन किया जिनमें से ३० का पता लग चुका है। कवि रइधू को म्पूर्ण साहित्य साधना का श्रेय अग्रवाल श्रावकों को ही है। रइधू के उल्लेखों । यह स्पष्ट है कि मध्यकाल में जैन धर्म, साहित्य, मूर्ति एवं मन्दिर निर्माण ला आदि के क्षेत्र में अग्रवालों का ही प्रमुत्व रहा।

जैन संस्कृति के प्रचार और प्रसार में केवल श्रावकों ने ही योग नहीं दिया लिक अग्रवाल जैन कवियों और साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं द्वारा लोक ल्याण की भावनाओं को प्रोत्सेजन दिया, जैसे बंसल गोत्री कवि भगवतीदास । इनकी अनेक कृतियां उपलब्ध हैं, जिनमें से कुछ तो इतनी बड़ी हैं जो वयं एक ग्रंथ का रूप ले लेती हैं। अनेक फुटकर रचनाएं हैं। इनकी तीस से यार फुटकर रचनाएं तो अजमेर के एक गुच्छक में संगृहीत हैं। इसी प्रकार अनेक अन्य कवि हैं जैसे श्रीधर, सधारू, बुधवीस, पृथ्वीपाल, नन्दलाल, रूप-चन्द, माऊ, जगजीवन, बंशीदास, हेमराज, बुलाकीदास, दरिगहमल, द्यानत-राय, वासीलाल, जगतराय, सन्तलाल आदि।

चूरू के अनेक अग्रवाल श्रावकों ने भी इस दिशा में बड़ा काम किया है। चूरू के मोहनरामजी सरावगी दिगम्बर जैन सिद्धांत के मानने वाले थे जो बाद में खुर्जा जा कर बस गये। इनके पुत्र माणकचन्दजी की धर्मपत्नी बड़ी सुयोग्या एव दानशीला थी, जो रानी कहलाईं। इन की सन्तान रानी वालों के नाम से प्रसिद्ध हुई। माणकचन्दजी के ७ पुत्र हरमुखराय, अमोलकचन्द, मणतराम, फूलचन्द, चम्पालाल, अमृतलाल और भूरामल हुए। अमोलकचन्द जी ने बडो धन राशि व्यय करके खुर्जे मे शिखरबंद मंदिर बनवाये जिनमें स्वर्ण की चित्र-कारी बड़ी कलापूर्ण है[1]। रा०ब० चम्पालालजी ने ब्यावर में एक सुन्दर नशिया बनवाई; जिस में बगीचा तथा ऊंची कुर्सी का एक विशाल जिन भवन है। भारतवर्षीय दि०जैन महाविद्यालय भी इस नशियां में चालू है। फूलचन्दजी

---

[1] इम्पीरियल गैजेटियर ऑफ इंडिया जिल्द 15, पृ. 297 पर खुर्जा के संबंध में जानकारी देते हुए लिखा गया है–

The principal inhabitants are Kheshgi Pathans and Churuwala Banias, the latter who are Jain by religion, are an enterprising and wealthy class, carrying on banking all over India and taking a leading share in the trade of the place. Thirty years ago they built a magnificent domed temple, which cost more than a lakh and is adorned with a profusion of stone carving of fine execution. The interior is a blaze of gold and colour, the vault of the dome being painted and decorated in the most florid style of indigenous art.

के पुत्र पद्मराजजी जैन सुप्रसिद्ध राष्ट्र सेवी रहे हैं, आजादी के संघर्ष में न केवल वे स्वयं ही जेल गये बल्कि उनकी पुत्री इन्दुमति ने भी जेल यात्रा की। चूरू के सेठ छाजूरामजी सरावगी दिगम्बर जैन मत के अनुयायी थे । जो चूरू से बिसाऊ चले गये। बिसाऊ में उनके पुत्र हररूपदासजी ने एक सुन्दर जैन मंदिर का निर्माण करवाया। सुजानगढ़ निवासी स्व० श्रीभंवरीलालजी बाकली वाला ने जैन धर्म के प्रचार प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया। "देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान" नामक वृहत् इतिहास ग्रंथ के लेखक चूरू के स्व० श्री बालचन्दजी मोदी इसी धर्म के मानने वाले थे। चूरू के श्री बद्रीप्रसादजी सरावगी जो आजकल पटना रहते हैं, दिगम्बर जैन मत के प्रबल पोषक हैं और इस कार्य में विपुल धनराशि व्यय करते हैं। चूरू जिले के प्रवासी बन्धुओं ने जैनधर्म के प्रचार प्रसार में जो योग दिया है, उसका लेखा किसी स्वतंत्र निबन्ध में ही किया जा सकेगा।

चूरू का दिगम्बर जैन मंदिर–

चूरू में एक बहुत सुन्दर शिखरबंद दिगम्बर जैन मंदिर है। इसका निर्माण समय तो अज्ञात है, लेकिन इतना निश्चत है कि सं० १७९७ से पूर्व इस का निर्माण हो चुका था।[1] बाद में समय समय पर इसका विकास होता रहा। मंदिर का शिखर सं० १८८० और १८८५ के बीच बना। मन्दिर में मूलनायक श्री पार्श्वनाथजी की मूर्ति सं० १५७५ की बनी, काले पत्थर की है जो बड़ी भव्य है। वेदी में विभिन्न तीर्थंकरों की कुल १५ मूर्तियां हैं जो भिन्न भिन्न सं० की बनी हैं, कुछ मूर्तियां धातु की हैं और कुछ पाषाण की।

---

१. सं १७९७ में सरावगी अनोपचंद की बहू ने मंदिर को ६०० गज जमी चढ़ाई थी। उस वक्त चूरू पर बणीरोत ठाकुरों का आधिपत्य था। बाद में ज चूरू खालास हो गया तो सं १८९५ में भूतपूर्व बीकानेर राज्य की ओर से जमी के पट्टे का नवीनीकरण किया गया जो निम्न है—

श्री दीवान वचनात् जमी १ सरावगी सुवाईराम अनोपचंद री सिगरत्रं देहरै सांमी हुती सु सुवाईराम अनोपचंद तो धक गया। अनोपचंद की बो (अकेली) छी सु जैन रै देहरै जमी चढ़ाव दीवो तैरो कागज १ सं० १७९ ो भोगतो (रो) छै, कोरो जमी दर गज ६०० अखरे छव सो रो भोग सुं छै —...तैरी चौथाई रा रु० २५) अखरे पचीस श्री रतनसाही ज कर दिवो छै—ऐ रुपिया चूरू रै साहै अमरावसंघ अनाड़संघ हुस हुसी सं० १८९५ रा० मी० वैसाख वदी १४।

इन के अतिरिक्त ३ ताम्रयंत्र भी हैं जिन में से २ में काष्ठा संघ का उल्लेख स्पष्ट है। एक यंत्र सं० १६४५ का दूसरा १६६८ का और तीसरा संभवत: १६६५ का है। इस में 'पतिसाहि श्रीसाहिजहां पुरम दिल्ली राज्ये कायमखां वंसे दीवान दौलतखां राज्ये गर्ग गोत्रो सा० सीहा तत्पुत्रे......।' आदि पाठ उत्कीर्ण है. अतः लगता है कि यह यंत्र फतेहपुर से लाकर यहां रखा गया हो। फतेहपुर से अनेक परिवार चूरू आकर बसे और संभवत: उक्त ताम्रयन्त्र भी उन्हीं में से किसी के द्वारा लाया गया हो। भूतपूर्व बीकानेर राज्य की ओर से उक्त मन्दिर को केशर चन्दन के २) मासिक दिये जाते थे।[1]

संवत् १६८५ से मन्दिर का विकास विशेष रूप से शुरु हुआ। मन्दिर के नीचे अब लाखों रुपये का स्टेट है, एक जैन आश्रम स्टेशन रोड़ पर है। वि० सं० १६६३ में दिगम्बर जैन मुनि श्री सूर्यसागरजी अपने शिष्यों के साथ चूरू पधारे थे। मन्दिर के शास्त्र भंडार में कुछ हस्त लिखित ग्रंथ भी हैं। श्रीमा स्वामी विरचित मोक्ष शास्त्र स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। हर वर्ष भादों शुक्ला १४ को पार्श्वनाथजी की पालकी बड़ी धूम धाम से निकाली जाती है।

रिणी (तारानगर) में भी जैन अग्रवालों का काफी प्रभाव रहा है। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री तुलसीरामजी सरावगी यहीं के थे। तारानगर (रिणी) में संवत् १६६६ में अग्रवाल श्रावकों ने पार्श्वनाथजी का नवीन मंदिर बनाया है।[2]

सुजानगढ़ में भी दिगम्बर जैन मन्दिर है। अभी कुछ समय पूर्व (वीर निर्वाण सं० २४६४ आषाढ़ शुक्ला २) दिगम्बर जैन आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज संघ सहित सुजानगढ़ पधारे थे और वहीं आपका चातुर्मास हुआ। इस अवसर पर बड़ा भव्य जुलूस निकला, जिसमें १०८ औरतें भी अपने सिरों पर पानी से भरी मटकियां लिए शामिल थीं। आचार्य विमलसागरजी महाराज संस्कृत के उत्तम विद्वान् और प्रभावक सन्त हैं।

1. दफ्तर का कागज निम्न है—
॥ श्री दीवान वचनात् चूरू रा हवालदार जोग्य तीथा चूरू में डीगंबरियां रो मींदर छै तेरै केशर चनण रा मा. 1 रु. 2) अगरे रुपीया दोय श्री दरबार सु कर दीया छै सु हवालदार दे दै सु चतु दीयां जाय जा..........
दः सिमरथेन कोठार सं० 1933 मिती जेठ बदी 11
2. श्री वीर सं० 2469 श्री विक्रम सं० 1999 जेठ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ 7 गुरु वासरे श्री बीकानेर राज्ये तारानगरे (रिणी) श्री दिगम्बर जैन धर्म परायण श्रावक वंशोद्भव श्री अग्रवाल श्री रावतमलजी तत्पात्मज श्री रायजी तत्यात्मज श्री कुन्दनमलजी मजलालजी प्रतिष्ठितं श्री श्री 1008 पार्श्वनाथजी भगवान श्री कुन्दकुन्दाम्नायानुसारेण ॥

चूरू जिले के जैन मंदिर और उपाश्रय आदि—

चूरू—

श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर, उपाश्रय और दादाबाड़ी। पार्श्वनाथजी का दिगम्बर जैन मन्दिर और उस की बगीची। लौंका गच्छ का उपाश्रय, पायचंद गच्छ का उपाश्रय।

डूंगरगढ़— श्री पार्श्वनाथ जी का मन्दिर।

बिग्गा— श्री शान्तिनाथ जी का मन्दिर।

राजलदेसर—

श्री आदिनाथजी का मन्दिर, सं० १५८४ में प्रतिष्ठित। यहां कंवला-गच्छ का एक उपाश्रय भी है।

रतनगढ़—

आदिनाथ जी का मन्दिर, दादाबाड़ी और खरतर गच्छ का उपाश्रय है।

बीदासर—

खरतर गच्छ का उापश्रय है जिस के देहरासर में चन्द्रप्रभुजी की मूर्ति है।

सुजानगढ़—

श्री पार्श्वनाथजी, श्री आदिनाथजी के मन्दिर तथा खरतर गच्छ और लौंका गच्छ के २ उपाश्रय हैं। दो दादाबाड़ियां, एक दिगम्बर जैन मंदिर तथा नशियां हैं।

चाहड़वास— उपाश्रय है।

सरदारशहर—

श्री पार्श्वनाथजी के २ मन्दिर व एक दादाबाड़ी है।

राजगढ़—

सुपार्श्वनाथजी का मंदिर और मंदिर से संलग्न खरतर गच्छ का उपाश्रय है।

रिणी—

श्री शीतलनाथजी का प्राचीन मन्दिर और उपाश्रय है। कुछ वर्ष पूर्व वहां श्री पार्श्वनाथजी का एक दिगम्बर जैन मंदिर भी बना है।

संभवत: मेहणा और ददरेवा में भी जैन मन्दिर रहे हैं। वाचक श्री [illegible] कृत स्तवन के अनुसार ददरेवा में १७ वीं शताब्दी में शान्तिनाथ का [illegible]। लेकिन अब उक्त मन्दिर का कोई चिह्न शेष नहीं है।

[illegible]रदारशहर के निकटवर्ती ग्राम जीवनदेसर में भी संभवतः कोई जैन [illegible]य रहा हो। सरदारशहर से श्री देवेन्द्र हाण्डा (बेसिक ट्रेनिंग कालेज) ने [illegible]नित किया है कि जीवनदेसर में जैनदेवी अम्बा की संगमरमर की छोटी मू[illegible] जिसे दुर्गा समझ कर स्थानीय लोग पूजते हैं।

साहित्य–

जैन साहित्य के क्षेत्र में भी चूरू जिले की देन बहुत महत्त्वपूर्ण है। अनेक लब्ध प्रतिष्ठित कवियों और लेखकों ने यहां अपनी प्रसिद्ध रचनाएं तैयार की हैं। अनेक जैन विद्वानों ने चूरू जिले के अनेक गांवों और कसबों को अपने साधना स्थल बनाकर साहित्य का प्रणयन किया है। ऐसी रचनाओं को संख्या बहुत बड़ी है और साथ ही अज्ञात भी, इस लिए उदाहरण स्वरूप कुछ कृतियों का नामोल्लेख किया जा रहा है—

खरतर गच्छीय हीर कलश १७ वीं शताब्दी के जाने माने विद्वान् हैं। इन्होंने सं० १६२२ में राजलदेसर में "चन्द्रगुप्त सोल स्वप्न सज्झाय" और "चुर पासा केवली" लिखी। उपाध्याय गुणविनय ने ग्राम सेरूणा में सं० १६४६ में "नलदमयन्ती चम्पू वृत्ति" और १६४७ में "वैराग्य शतक[1] वृत्ति" की रचना की। सेरूणा में ही आपने सं० १६५७ में विचार रत्न संग्रह (हुण्डिका) नामक वृहद् ग्रंथ का संकलन किया जिस का परिणाम बारह हजार श्लोकों का है। इस शताब्दी के कवियों में महाकवि समय सुन्दर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सं० १६४९ में लाहौर में सम्राट अकबर के दरबार में आपने 'अष्टलक्षी' नामक ग्रंथ प्रस्तुत किया था जिस से सम्राट और विद्वद् परिषद् के सभी विद्वान् प्रभावित हुये थे। इन कविवर ने भी इस क्षेत्र को अपनी रचनाओं के लिए उपयुक्त स्थान समझा। इन्होंने रिणी में सं० १६८१ में 'यति आराधना' और १६८५ में 'कल्पलता' नामक ग्रंथों की रचना की। 'सत्याराधना' भी सं० १६८५ में यहीं रचा गया। आप का संस्कृत ग्रंथ ... आप के द्वारा की गई "माघ-काव्य वृत्ति" (तृतीय सर्ग) की संस्कृत टीका चूरू के सुराना पुस्तकालय में है। रिणी में ही चारित्र सिंघ ने सं० १६३६ में 'मुनि मालिका' की रचना की।

चूरू जिले में निर्मित कुछ अन्य ग्रन्थ निम्न हैं—

रचना काल	ग्रंथ नाम	रचयिता
सं० १७२३	उत्तराध्ययन दीपिका	चारित्रचन्द्र
सं० १७२५	धर्म बावनी[2]	धर्मवर्द्धन
सं० १७४६	पंचकुमार कथा	लक्ष्मीवल्लभ
सं० १६५० लगभग	विजयतिलक कृत आदिस्त० बालावबोध	गुणवि०
सं० १८२५	सुभद्रा चौपाई	रघुपति
सं० १८२५	प्रस्ताविक छप्पय बावनी	रघुपति

[1] कवि के स्वयं लिखित बीकानेर ज्ञान भंडार की प्रति में:– "सेरुणक नाम्नि वर नगरे"

[2] धर्म बावनी की 1 प्रति सं० 1883 की 'नगर-श्री' के संग्रह में है। श्री कृष्ण उपदेस बावनी (सं० 1883) और केशवदास बावनी की प्रतियां भी 'नगर-श्री' के संग्रह में हैं।

चूरू जिले में रचित बहुत सारा साहित्य तो आवश्यक सुरक्षा और संरक्षण के अभाव में नष्ट हो चुका है, बहुत सा यत्र तत्र बिखरा पड़ा है और अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। अभी अभी श्री जगदीश भाटी ने डॉ० बृजमोहन जावलिया के निजी संग्रह की एक प्रति यति जयचन्द्र जयविमल कृत सईकी की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह कृति मेवाड़ के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना पर प्रामाणिक प्रकाश डालती है। यह एक सम सामयिक रचना होने के कारण मेवाड़ के तत्कालीन इतिहास के वास्तविक अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी है। सईकी के रचयिता जयचन्द्र जयविमल, खरतर गच्छ की कीर्तिरत्न सूरि शाखा में सकल हर्ष के शिष्य थे और इन्हों ने संवत् १७३० में ग्राम सेरूणा में इस की रचना की थी[1]। इसी प्रकार के अन्य भी अनेक ग्रंथ होंगे जिनको प्रकाश में लाने की अत्यंत आवश्यकता है।

ऐसे भी अनेक ग्रंथ हैं जो रचे तो कहीं और गये लेकिन उन का वास्तविक लेखन चूरू क्षेत्र में ही हो पाया। प्रतिलिपियां तो न जाने कितने ग्रंथों की हुई होंगी। शोध और खोज करने पर अनेक ग्रंथों के प्रकाश में आने की संभावना है, क्योंकि यह क्षेत्र अनेक कवियों और साहित्यकारों की लीलाभूमि रहा है।

ग्रंथ भंडार

चूरू जिले के अनेक ग्रंथ भण्डारों में बड़ी संख्या में जैन ग्रंथ हैं। चूरू के सुराना पुस्तकालय में अनेक प्राचीन ग्रंथ हैं। महाकवि मूलक रचित प्रतिज्ञा गांगेय की ताड़पत्रीय प्रति तो दुर्लभ है। संवत् ८०४ का वसुधारा स्तोत्र भी अलभ्य है। इस पुस्तकालय में ६००–८०० तक के पत्र हैं। अनेक ग्रंथ सचित्र भी हैं। काले पत्र वाले कुछ प्राचीन सचित्र ग्रंथ हैं। चूरू के खरतर गच्छ और लौंका गच्छ के उपाश्रयों में भी हस्तलिखित ग्रंथ हैं। छापर के श्री मोहनलाल जी दूधोड़िया का संग्रह भी बहुमूल्य है, इस में चुनी हुई प्राचीन प्रतियों के अतिरिक्त प्राचीन चित्रों का भी अच्छा संग्रह है। सरदारशहर के श्री वृद्धिचंद जी गधेया के यहां भी उल्लेखनीय संग्रह है। यहां की तेरा पंथी सभा में भी काफी हस्तलिखित ग्रंथ हैं। सुजानगढ़ में लौंका गच्छ के यति रामलालजी, खरतर गच्छीय यति दूधेचन्द जी, दानचन्द जी चोपड़ा और सिंघी जैन मंदिर में अच्छी संख्या में हस्तलिखित प्रतियां हैं। इन के अतिरिक्त राजलदेसर, रतनगढ़, बीदासर, राजगढ़, तारानगर (रिणी) आदि में भी हस्त ग्रंथों को हैं।

1. संवत् सतरै में तीस मास मिगसर तिथि पूनम।
सेरूणो सहर सुठाम, अधिक मन आंणी उद्यम॥
(द्रष्टव्य, मरु भारती, वर्ष 17, अंक [illegible])

स्थानकवासी—

लौंकाशाह के अनुयायियों में लवजी मुनि हुए, जिन्होंने सं० १७०६ में 'ढूंढ़िया' सम्प्रदाय का उद्भव किया। इसी सम्प्रदाय की एक शाखा के आचार्य धर्मदासजी (वि० सं० १७१६ में दीक्षित) हुए। उन के निन्यानवे शिष्य हुए, जो आचार्य धर्मदास के दिवंगत होने पर बाईस शाखाओं में विभक्त हो गये। इस कारण उनकी शिष्य परम्परा बाईस टोला नाम से प्रसिद्ध हुई। इस बाईस टोला पंथ के संतों का भी इस क्षेत्र में काफी आवागमन रहा। स्थानकवासी नाम शायद इस सम्प्रदाय के मुनियों के स्थानकों में रहने के कारण चल पड़ा। स्थानकवासी आचार्य श्री श्रीलालजी, सुप्रसिद्ध जवाहरलालजी और गणेशीलाल जी भी इस क्षेत्र में विचरे। सं० १९८४ में आचार्य जवाहरलालजो ने सरदारशहर में और अगले वर्ष चूरू में चातुर्मास किया।

स्थानकवासी सम्प्रदाय से ही सं० १८१७ में तेरापंथ का उदय हुआ। इस पंथ के प्रवर्त्तक आचार्य भीखणजी से कुछ मत भेद हो जाने के कारण श्री चन्द्रभाणजी पंथ से अलग हो गये और फिर चूरू क्षेत्र में खूब विचरे। स्थानीय लौंकागच्छ के उपासरे में एक गुटका है, जिसमें चन्द्रभाणजी के (सं० १८५२से१८५६ तक), इस क्षेत्र में विचरने का उल्लेख है[1]। तेरापंथ से विलग होने वालों में चन्द्रभाणजी के अतिरिक्त शिवजीरामजी, छोगजी और चतुर्भुजजी आदि ने भी इस क्षेत्र में पर्याप्त विहरण किया।

तेरापन्थ—

स्थानकवासी सम्प्रदाय में से तेरापंथ का उदय हुआ। आचार्य श्री भीखणजी तेरापंथ के प्रवर्त्तक और प्रथम आचार्य थे। वि० सं० १८१७ आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को उन्होंने तेरापंथ की स्थापना की। प्रथम आचार्य भीखणजी का आगमन चूरू में हो पाया, यह चूरू के लिए सौभाग्य की बात है[2]। उसी समय से चूरू जिले में तेरा पंथ का बीजवपन हुआ। आचार्य श्री भारमलजी, तेरापंथ के द्वितीय आचार्य थे, लेकिन चूरू जिले से उन के संपर्क के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है।

---

1. संवत अठारसैं बावनैं सुदि श्रावण हो एकम शुक्रवार।
रिष चन्द्रभाणजी रहे मनैं गुण गाया हो चूरू शहर मझार॥

2. कहा जाता है कि आचार्य भीखणजी वि. सं. 1836 में लाडनूं, गोपालपुरा, चाड़वास, ढ़रोवा तथा परिहारा होते हुए चूरू पधारे थे और रामनारायणजी मड्डा के मकान पर रहे थे।

तेरा पंथ के तृतीय आचार्य श्री रायचन्दजी स्वामी (ऋषिरायजी) थे। सं० १८८७ में आपने चूरू जिले के बीदासर ग्राम में चातुर्मास किया। बीदासर चातुर्मास के अतिरिक्त आचार्य रायचंदजी ने चूरू में जीतमलजी स्वामी (जो बाद में चतुर्थ आचार्य बने), रिणी में सरूपचंदजी स्वामी, रतनगढ़ में ईसरजी स्वामी के चातुर्मास करवाये। इस एक ही वर्ष में इस क्षेत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ[1]। जीतमलजी ने चूरू में बड़ी सफलता से जनता को पंथ के अनुकूल बनाया। अनेक भाई बहिनों ने गुरु धारणा की। तेरापंथ की अत्यंत प्रसिद्ध साध्वियों में गिनी जाने वाली महासती सरदारांजी ने भी इसी वर्ष चूरू में गुरुधारणा की। जयाचार्य ने सं० १९०८ में चूरू जिले के एक कसबे बीदासर में आचार्य पद ग्रहण किया। आप तेरापंथ के महान् आचार्य थे। आचार्य अवस्था में आपने १३ चातुर्मास और १० मर्यादा महोत्सव चूरू जिले में किये।

श्री मघवागणी तेरापंथ के पंचम आचार्य थे। आपको जन्म देने का सौभाग्य चूरू जिले के एक कसबे बीदासर को प्राप्त है। श्री पूर्णमलजी बेगवाणी के घर आपका जन्म चैत्र शुक्ला ११ को हुआ, माताजी का नाम बन्नाजी था। केवल ९ वर्ष की बाल आयु में आपने दीक्षा ग्रहण की। मघवागणी की आकृति अत्यंत सुन्दर थी और साथ ही उनका आन्तरिक व्यक्तित्व भी बड़ा उज्ज्वल था। जैन आगमों के वे धुरंधर विद्वान् थे। अनेक ग्रंथ तो उन्हें कंठस्थ थे। संस्कृत ग्रंथों का भी उनका अध्ययन अच्छा था और संस्कृत की कुछ फुटकर रचनाएं भी उन्होंने की थीं। लेकिन अधिकतर रचनाएं उन्होंने राजस्थानी में ही कीं। चूरू नगर में ही आपको युवाचार्य पद की प्राप्ति हुई। आचार्य अवस्था में आपने कुल ११ चातुर्मास किये, जिन में से ७ चूरू जिले में हुए।

श्री माणकगणी तेरापंथ के छठे आचार्य थे। आप चैत कृष्णा ३ को सरदारशहर में युवाचार्य पद पर और चैत्र कृष्णा अष्टमी को यहीं आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सं० १९५३ में आपने बीदासर में चातुर्मास किया, जहां आपने 'मघवा सुजस' की रचना की। आप का अंतिम चातुर्मास चूरू जिले के सुजानगढ़ कसबे में हुआ। आचार्य अवस्था में आप के कुल ५ चातुर्मास हुए, जिन में से ३ चूरू जिले में हुए।

श्री डालगणी तेरा पंथ के सप्तम आचार्य थे। उन का पूरा नाम डालचन्द [illegible]मी था। आचार्य अवस्था में आपने १२ चातुर्मास किये जिन में से ७ [illegible]जले में किये। इसी प्रकार १२ मर्यादा महोत्सवों में से ७ चूरू जिले में हुए।

1. वर्ष सित्यासियै सुखकार, हुयो धर्म उद्योत अपार।
धया धन्नी देस में थाट, च्यार तीर्थ तणा गह घाट॥

श्री कालूगणी तेरा पंथ के अष्टम आचार्य थे। वे बडे प्रभावशाली और पुण्यवान् आचार्य थे। उन के युग में तेरा पंथ समाज को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की विशेष उन्नति हुई। श्री कालूगणी को जन्म देने का श्रेय चूरू जिले के छापर कसबे को है। आप ने यहां सं० १९३३ में फाल्गुन शुक्ला २ को मूलचन्द जी कोठारी के घर जन्म लिया था। मातुश्री का नाम छोगां जी था। संवत् १९४४ में केवल ११ वर्ष की अवस्था में आपने छापर में ही दीक्षा ग्रहण की और संवत् १९६६ में आचार्य पद पर आसीन हुए।

तेरा पंथ में पहले जयाचार्य ने संस्कृत का अध्ययन किया, किन्तु वह एक बीज वपन के समान ही कहा जा सकता है। मघवागणी ने उसे अंकुरित किया। लेकिन उसे बढ़ाने, विविध दिशाओं में फैला कर शत शाखी बनाने तथा पुष्पित और फलित बनाने का समस्त श्रेय कालूगणी और चूरू नगर को ही जाता है। इस सम्बन्ध की घटनाएं संक्षेप में यों हैं कि सं० १९६० में डालगणी का बीदासर में पदार्पण हुआ था, वहां सघ में जब कोई साधु संस्कृत के एक श्लोक का अर्थ न लगा सका तो कालूगणी के मन में उथल पुथल मच गई और वे संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कृत संकल्प हो गये। उस के बाद डालगणी का पदार्पण चूरू नगर में हुआ। उन दिनों चूरू में बगड़ निवासी पं० घनश्यामदास जी रहते थे। श्री रायचन्द जी सुराना चूरू के प्रमुख श्रावकों में से थे। उन के माध्यम से कालूगणी से घनश्यामदास जी का परिचय हुआ और वे मनोयोग पूर्वक कालूगणी को संस्कृत का अध्ययन कराने लगे। पं० घनश्यामदास जी ने मुख वस्त्रिका बाध कर पढ़ाने में भी हर्ष अनुभव किया। जब तक कालूगणी चूरू में रहे तब तक तो पठन क्रम सुचारू रूप से चला ही, लेकिन बाद में भी पंडित जी कालूगणी को अपनी सेवायें देते रहे।

इस सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण कदम भी चूरू में ही उठाया गया। संवत् १९७४ में सरदारशहर चातुर्मास करने के पश्चात् कालूगणी का चूरू पदार्पण हुआ। चूरू में लौंका गच्छ उपाश्रय के यति रावतमलजी बड़े धर्मशील व्यक्ति थे, उन्होंने आशुकविरत्न पं० रघुनंदनजी[1] शर्मा आयुर्वेदाचार्य का

---

[1] पं० रघुनन्दनजी शर्मा अलीगढ़ के निकट सुनामई ग्राम के निवासी हैं। उन दिनों चूरू में एक 'मरु देशीय विद्वत्समिति' थी, जिसकी ओर से कई परीक्षाएं चलती थीं। यति रावतमलजी समिति के संरक्षकों में से एक थे। पं० जी० विद्यार्थियों की परीक्षा लेने हेतु आये हुये थे। उसी समय वे यति जी के माध्यम से आचार्य श्री के सान्निध्य में आये। पंडितजी ने आचार्य श्री से हुई बातचीत के आधार पर तीन घंटे में 'साधु शतक काव्य' की रचना की थी, जिसे चूरू निवासी मेसर्स रुक्मानन्द सागरमल बोथरा ने पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाया था।

तेरा पंथ के तृतीय आचार्य श्री रायचन्दजी स्वामी (ऋषिरायजी) थे। सं० १८८७ में आपने चूरू जिले के बीदासर ग्राम में चातुर्मास किया। बीदासर चातुर्मास के अतिरिक्त आचार्य रायचंदजी ने चूरू में जीतमलजी स्वामी(जो बाद में चतुर्थ आचार्य बने),रिणी में सरूपचंदजी स्वामी, रतनगढ़ में ईसरजी स्वामी के चातुर्मास करवाये। इस एक ही वर्ष में इस क्षेत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ[1]। जीतमलजी ने चूरू में बड़ी सफलता से जनता को पंथ के अनुकूल बनाया। अनेक भाई बहिनों ने गुरु धारणा की। तेरापंथ की अत्यंत प्रसिद्ध साध्वियों में गिनी जाने वाली महासती सरदारांजी ने भी इसी वर्ष चूरू में गुरुधारणा की। जयाचार्य ने सं० १९०८ में चूरू जिले के एक कसबे बीदासर में आचार्य पद ग्रहण किया। आप तेरापंथ के महान् आचार्य थे। आचार्य अवस्था में आपने १३ चातुर्मास और १० मर्यादा महोत्सव चूरू जिले में किये।

श्री मघवागणी तेरापंथ के पंचम आचार्य थे। आपको जन्म देने का सौभाग्य चूरू जिले के एक कसबे बीदासर को प्राप्त है। श्री पूर्णमलजी बेगवाणी के घर आपका जन्म चैत्र शुक्ला ११ को हुआ, माताजी का नाम बन्नाजी था। केवल ६ वर्ष की बाल आयु में आपने दीक्षा ग्रहण की। मघवागणी की आकृति अत्यंत सुन्दर थी और साथ ही उनका आन्तरिक व्यक्तित्व भी बड़ा उज्ज्वल था। जैन आगमों के वे धुरंधर विद्वान् थे। अनेक ग्रंथ तो उन्हें कंठस्थ थे। संस्कृत ग्रंथों का भी उनका अध्ययन अच्छा था और संस्कृत की कुछ फुटकर रचनाएं भी उन्होंने की थीं। लेकिन अधिकतर रचनाएं उन्होंने राजस्थानी में ही कीं। चूरू नगर में ही आपको युवाचार्य पद की प्राप्ति हुई। आचार्य अवस्था में आपने कुल ११ चातुर्मास किये, जिन में से ७ चूरू जिले में हुए।

श्री माणकगणी तेरापंथ के छठे आचार्य थे। आप चैत कृष्णा ३ को सरदारशहर में युवाचार्य पद पर और चैत्र कृष्णा अष्टमी को यहीं आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सं० १९५३ में आपने बीदासर में चातुर्मास किया, जहां आपने 'मघवा सुजस' की रचना की। आप का अंतिम चातुर्मास चूरू जिले के सुजानगढ़ कसबे में हुआ। आचार्य अवस्था में आप के कुल ५ चातुर्मास हुए, जिन में से ३ चूरू जिले में हुए।

श्री डालगणी तेरा पंथ के सप्तम आचार्य थे। उन का पूरा नाम डालचन्द जी स्वामी था। आचार्य अवस्था में आपने १२ चातुर्मास किये जिन में से ७ चूरू जिले में किये। इसी प्रकार १२ मर्यादा महोत्सवों में से ७ चूरू जिले में हुए।

1. वर्ष सित्यासियै सुखकार, हुयो धर्म उद्योत अपार।
थया थली देस में थाट, च्यार तीर्थ तणा गह घाट॥

श्री कालूगणी तेरा पंथ के अष्टम आचार्य थे। वे बड़े प्रभावशाली और पुण्यवान् आचार्य थे। उन के युग में तेरा पंथ समाज की भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की विशेष उन्नति हुई। श्री कालूगणी को जन्म देने का श्रेय चूरू जिले के छापर कस्बे को है। आप ने यहां सं० १६३३ में फाल्गुन शुक्ला २ को मूलचन्द जी कोठारी के घर जन्म लिया था। मातुश्री का नाम छोगां जी था। संवत् १६४४ में केवल ११ वर्ष की अवस्था में आपने छापर में ही दीक्षा ग्रहण की और संवत् १६६६ में आचार्य पद पर आसीन हुए।

तेरा पंथ में पहले जयाचार्य ने संस्कृत का अध्ययन किया, किन्तु वह एक बीज वपन के समान ही कहा जा सकता है। मघवागणी ने उसे अंकुरित किया। लेकिन उसे बढ़ाने, विविध दिशाओं में फैला कर शत शाखी बनाने तथा पुष्पित और फलित बनाने का समस्त श्रेय कालूगणी और चूरू नगर को ही जाता है। इस सम्बन्ध की घटनाएं संक्षेप में यों हैं कि सं० १६६० में कालूगणी का बीदासर में पदार्पण हुआ था, वहां संघ में जब कोई साधु संस्कृत के एक श्लोक का अर्थ न लगा सका तो कालूगणी के मन में उथल पुथल मच गई और वे संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कृत संकल्प हो गये। उस के बाद कालूगणी का पदार्पण चूरू नगर में हुआ। उन दिनों चूरू में वगड़ निवासी पं० घनश्यामदास जी रहते थे। श्री रायचन्द जी सुराना चूरू के प्रमुख श्रावकों में से थे। उन के माध्यम से कालूगणी से घनश्यामदास जी का परिचय हुआ और वे मनोयोग पूर्वक कालूगणी को संस्कृत का अध्ययन कराने लगे। पं० घनश्यामदास जी ने मुख वस्त्रिका बांध कर पढ़ाने में भी हर्ष अनुभव किया। जब तक कालूगणी चूरू में रहे तब तक तो पठन क्रम सुचारू रूप से चला ही, किन्तु बाद में भी पंडित जी कालूगणी को अपनी सेवायें देते रहे।

इस सम्बन्ध में दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम भी चूरू में ही उठाया गया। संवत् १६७४ में सरदारशहर चातुर्मास करने के पश्चात् कालूगणी का चूरू पदार्पण हुआ। चूरू में लौंका गच्छ उपाश्रय के यति रावतमलजी बड़े धर्मशील व्यक्ति थे, उन्होंने आशुकविरत्न पं० रघुनंदनजी[1] शर्मा आयुर्वेदाचार्य का

---

[1] पं० रघुनन्दनजी शर्मा अलीगढ़ के निकट सुनामई ग्राम के निवासी हैं। उन दिनों चूरू में एक 'नव रैशोव विद्वत्समिति' थी, जिसकी ओर से कई परीक्षाएं चलती थीं। यति रावतमलजी समिति के संरक्षकों में से एक थे। पं० जी० विद्यार्थियों की परीक्षा लेने हेतु आये हुये थे। इसी समय वे यति जी के माध्यम से आचार्य श्री के सान्निध्य में आये। पंडितजी ने आचार्य श्री से हुई बातचीत के आधार पर तीन घंटे में 'साधु शतक काव्य' की रचना की थी, जिसे चूरू निवासी मेसर्स रुपमानन्द सागरमल बोथरा ने पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाया था।

साक्षात्कार कालूगणी से करवाया। पंडितजी बड़े विद्वान् हैं और तत्काल दिये हुए किसी भी विषय पर धारा प्रवाह श्लोक रचना कर सकते हैं। आचार्य कालूगणी भी पंडितजी की विद्वत्ता से प्रभावित हुए। पंडितजी ने अपनी सेवाएं कालूगणी को समर्पित कीं और प्रति वर्ष उनका आवागमन उनके पास होने लगा। पंडितजी की यह सेवा तेरा पंथ की भावी उन्नति की आधार शिला बन गई। पंडितजी तेरा पंथ में विद्या प्रसार के लिए बहुत बड़े निमित्त बने, कहना चाहिए तेरा पंथ में विद्या विकास का द्वार पूर्णत: उन्ही के योग से खुला। मुनि श्री चौथमलजी ने 'भिक्षुशब्दानुशासन' का निर्माण किया। पंडितजी ने उस पर वृहद्वृत्ति लिख कर तेरा पन्थ के मुनि-समाज को संस्कृत अध्ययन में स्वावलम्बी बना दिया। आचार्य श्री को व्याकरण तथा दर्शन-शास्त्र के अध्ययन में इन्हीं का योगदान रहा। पंडितजी के आशुकवित्व से प्रेरणा पाकर पंथ के अनेक प्रतिभा शाली सन्त आशुकविता करने में सफलता प्राप्त कर सके और यह सफलता विद्वत् समाज में संघ के गौरव को बहुत ऊंचा करने वाली सिद्ध हुई। इस प्रकार चूरू की यह घटना तेरा पन्थ के लिए बड़ी मूल्यवान् और चिर स्मरणीय प्रकाश रेखा के रूप में अंकित हो गई।

कालूगणी तेरा पंथ के अत्यंत प्रभावशाली आचार्य थे। उन के युग में तेरा पंथ ने अपना प्रभाव क्षेत्र काफी विस्तृत किया और कालूगणी के युग में श्रमण संघ, श्रावक वर्ग, क्षेत्र, पुस्तक तथा कला आदि में अभूत पूर्व प्रगति हुई। धर्म प्रसार के लिए उन्होंने तेरा पंथ के क्षेत्र को विस्तृत किया और धर्म प्रचार के लिए दूर-दूर तक साधुओं को भेजा। कला के प्रति उन का सहज आकर्षण था अत: साधुओं के वस्त्र,पात्र रजोहरण आदि उपकरणों में सुरुचिता का उद्भव हुआ।

साधु समाज के निरन्तर उपयोग में आने वाली छोटी से छोटी वस्तु भी कलामयी बन गई। लिपिकला में भी चमत्कार पैदा हुआ। अनेक सन्तों के सुन्दर अक्षर मोती बन कर पत्रों पर उतरने लगे। अनेक प्रतियों का जीर्णोद्धार हुआ और अनेक ग्रन्थ रत्नों की वृद्धि हुई। संघ में समस्या पूर्ति का का[illegible] उन्हीं के युग में प्रारम्भ हुआ। कालूगणी के रूप में तेरा पंथ को एक मातृ[illegible] [illegible]र्ण आचार्य मिले थे। वयोवृद्ध संत श्री सोहनलाल जी (चूरू) उन के गुण[illegible] [illegible]णों और वात्सल्य को अब भी स्मरण करते हैं तो द्रवित हो उठते हैं। लेकि[illegible] आचार्य श्री जहां कोमल थे, वहां मर्यादा पालन में अत्यत कठोर एवं दृढ़ [illegible] थे। यद्यपि महाप्रयाण से कुछ पूर्व उन की शारीरिक स्थिति अत्यन्त ही दुर्ब[illegible] [illegible] अवस्था में भी उन्होंने मर्यादा के पालनार्थ केश लुंचन करवाय[illegible]

कालूगणी गणी गणोती सूझ बूझ के धनी थे, इस का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण उनका वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी को युवाचार्य पद प्रदान करना है।

संक्षेप में कालूगणी के न्यायवादी शासन से तेरा पंथ को अत्यंत सुस्थिरता और आन्तरिक सबलता प्राप्त हुई। वस्तुतः उन का शासनकाल सभी दृष्टि कोणों से स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। चूरू जिला भी उनको उत्पन्न कर गौरवान्वित हुआ है।

कालूगणी के शासन काल में ४१० दीक्षाएं हुईं जिन में से एक सौ पचपन साधु और २५५ साध्वियां थीं। उन से पहले कभी साधुओं की संख्या ८० से ऊपर नहीं गई थी, लेकिन जब वे दिवंगत हुए तब संघ में १३६ साधु और ३२३ साध्वियां विद्यमान् थी। आचार्य अवस्था में आपने २७ चातुर्मास किये और २७ ही मर्यादा महोत्सव मनाये गये जिन में से क्रमशः १५ चातुर्मास और १७ मर्यादा महोत्सव चूरू जिले में हुए।

श्री तुलसी गणी तेरापंथ के नवम आचार्य हैं। आपका जन्म चूरू जिले की सीमा को छूते हुए लाडनूं नामक प्राचीन ऐतिहासिक नगर में कार्तिक शुक्ला २ सं० १९७१ को श्री झूमरमलजी खटेड़ के घर हुआ था, मातु श्री का नाम वदनांजी है। पौष कृष्णा ५ को लाडनूं में ही आपकी दीक्षा हुई और प्रथम भाद्रपद शुक्ला ६ सं० १९९३ को आपने आचार्य के रूप में तेरापंथ का शासन भार संभाला। आपके अनुशासन में रहते हुए तेरापंथ ने अभूतपूर्व उन्नति की है। तेरापथ उनकी शक्ति का स्रोत है और वे तेरापंथ की शक्ति के केन्द्र हैं। प्रचार और प्रसार के क्षेत्र में भी तेरापथ ने बहुत बड़ा सामर्थ्य प्राप्त किया है और जन संपर्क का क्षेत्र भी आशातीत रूप में विस्तीर्ण हुआ है। आचार्य श्री सुर दक्षिण तक प्रवेश पा चुके हैं।

अणुव्रत आंदोलन के रूप में आपने इस युग को अनुपम देन दी है। अब तो यह आंदोलन बहुत व्यापक बन गया है। चूरू के लिए यह विशेष गौरव की बात है कि इस आंदोलन का सूत्रपात चूरू जिले के ही एक प्राचीन कसबे छापर में हुआ। अणुव्रत आंदोलन के सुदृढ़ भवन की नींव यहीं लगी। चूरू जिले के दूसरे कसबे राजलदेसर में इस कार्य को गति मिली और सं० २००५ में फाल्गुन शुक्ला २ को चूरू जिले के ही एक नगर सरदारशहर में आचार्य श्री ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। आंदोलन के परामर्शक भी सरदारशहर के ही मुनि श्री नगराजजी हैं।

दिनांक २१ अगस्त १९५९ को तेरापथ द्विशताब्दी समारोह व्यापक व विराट रूप में मनाने का निश्चय लिया गया, जिसमें विभागीय कार्यों का सुचारू

रूप से परिचालन करने के लिए जिन १३ व्यक्तियों को उत्तरदायित्व सौंपा गया उन में से ६ चूरू जिले के थे। उक्त अवसर पर कई प्रदर्शनियां भी लगाई गई। एक प्रदर्शनी "आचार्य श्री भिक्षु-तत्त्व आलेख कक्ष" के नाम से लगाई गई। आलेख-कक्ष की शोभा बढ़ाने में जिन दो संग्रहों का विशेष सहयोग रहा, उन में एक संग्रह छापर निवासी मोहनलालजी दूधेड़िया का था। उस में ताड़-पत्र तथा कागजों पर लिखे विभिन्न काल के ग्रन्थ और पुरातत्त्व सम्बन्धी अन्य दुर्लभ सामग्रियों का बड़ा महत्वपूर्ण संकलन था। दूसरा संग्रह चूरू निवासी मंगलचन्दजी सेठिया का था। उस में अणुव्रत आंदोलन के प्रत्येक नियम पर कलात्मक विवेचन देने वाले भाव चित्र थे। उन्होंने वे चित्र कलकत्ता व चूरू में तैयार करवाये थे। इन चित्रों को तैयार कराने का श्रेय सेठियाजी के परम मित्र स्व० पं० कुञ्जविहारीजी की अनुपम सूझ बूझ को ही है।

द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में तेरापन्थी महासभा ने "आचार्य श्री भिक्षु स्मृति ग्रंथ" के प्रकाशन का निर्णय लिया। ग्रन्थ के अनुरूप सामग्री संग्रह तथा प्रकाशन आदि के प्रबंध का भार कन्हैयालालजी दूगड़ रतनगढ़ निवासी को दिया गया। श्री दूगड़जी ग्रंथ के प्रबध सम्पादक थे।

तुलसी गणी के आचार्य काल के २५ वर्ष पूरे होने पर सार्वजनिक रूप से उनकी रजत जयंती (धवल-समारोह) मनाने का निर्णय लिया गया। इस के लिए 'धवल समारोह समिति' का गठन किया गया, जिस में देश भर के शीर्ष विद्वान्, नेता और मंत्रीगण थे। चूरू जिले का यह सौभाग्य रहा कि धवल-समारोह का प्रथम चरण उस के ही एक कसवे बीदासर में मनाया गया, जिसमें केन्द्रीय विद्युत उपमंत्री श्री जयसुखलाल हाथी, बीकानेर महाराजा श्री करणीसिंहजी व अन्य अनेक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों व ख्याति प्राप्त पुरुषों ने भाग लिया।

द्वितीय चरण में आचार्य श्री को उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने आठ
ो पृष्ठों का "आचार्य श्री तुलसी अभिनन्दन ग्रंथ" समर्पित किया। इस ग्रंथ को
करने में देश भर के मूर्द्धन्य विद्वानों ने योग दिया। सम्पादक मण्डल में
श्री जयप्रकाशनारायण, नरहरि विष्णु गाडगिल, के. एम. मुन्शी, मैथिली-शरण गुप्त, जैनेन्द्रकुमार और मुनि श्री नगराजजी (सरदारशहर) सहित १२ सज्जन थे। लेकिन इस कार्य में मुनि श्री नगराजजी का परिश्रम ही आद्योपान्त
रूप से रहा। श्री जयप्रकाशनारायण के शब्दों में—"ग्रंथ सम्पादन की
का सारा श्रेय मुनि श्री नगराजजी को है। साहित्य और दर्शन उन
य है। मैं संपादक मंडल में अपना नाम इस लिए दे पाया कि वह कार्य

न की देन देश में हुआ है।"

इस विशिष्ट अवसर पर आचार्य श्री ने मुनि श्री बुद्धमल[1]जी (शार्दूलपुर-जिला, चूरू) तथा मुनि श्री नगराजजी (सरदारशहर-जिला, चूरू) को क्रमशः अपने साहित्य विभाग और अणुव्रत विभाग के परामर्शक नियुक्त किये। इस सुअवसर पर मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' (राजलदेसर-जिला, चूरू) को आचार्य श्री ने आशीर्वाद प्रदान करते हुए फर्माया—

सुशिष्य मुनि महेन्द्रजी! तुमने अणुव्रत प्रचार और साहित्य की दिशा में जो ध्यान दिया है, उससे मैं प्रसन्न हूं। विशेष प्रगति के लिए इस धवल समारोह के अवसर पर मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं।"

साधुओं की तरह साध्वियों का भी जैन धर्म के उत्थान, विकास और प्रचार प्रसार में कम योग नहीं रहा है। जैन संस्कृति के उन्नायकों ने नारी को निर्वाण प्राप्ति के मार्ग में आने से कभी नहीं रोका। भगवान् महावीर ने नारी को अपने संघ में दीक्षित कर उन के आत्म साधन का मार्ग खोल दिया था, जिस के परिणाम स्वरूप उन के शिष्यों में जितने श्रमण थे, उन से ज्यादा श्रमणियां थीं। साध्वी समूह की व्यवस्था के लिए महावीर ने आर्या चन्दनबाला को नियुक्त किया था। चन्दनबाला आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई अनेक वर्षों तक नारी संघ की अधिष्ठात्री रही।

जैन कथा ग्रंथों में अनेक कुशल अध्यापिकाओं और उपदेशिकाओं का उल्लेख मिलता है। अनेक नारियां विदुषी होने के साथ-साथ लेखिका और कवयित्री भी हुई हैं। लेखिकाओं में गुणसमृद्धि, पद्मश्री, हेमश्री, सिद्धश्री, विनयचूल, हेमसिद्धि, जयमाला आदि प्रमुख हैं। अनुलक्ष्मी, अमुलश्री, अवन्ती

1. मुनि श्री बुद्धमल जी राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् लेखक हैं। आप ने ही "तेरा पंथ" का प्रामाणिक बृहद् इतिहास लिखा है। अन्य भी आपने बीसों ग्रंथ लिखे हैं और अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया है। मुनि श्री से मैं विनय करूंगा कि वे आचार्य श्री की अनुज्ञा प्राप्त कर एक ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ का प्रणयन करें कि जिस में तेरापंथ के उद्भव से लगा कर आज तक के सभी संतों और साध्वियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समावेश हो। संघ की विशेष सेवा करने वाले प्रमुख श्रावकों और उन की महत्वपूर्ण सेवाओं का संक्षिप्त उल्लेख भी इस में किया जा सकता है। यदि ऐसा संभव हो सके तो यह स्थायी महत्व का एक अत्यंत उपयोगी और दिग्दर्शक कार्य होगा।

धवल समारोह के अवसर पर आचार्य श्री की कृतियों का सम्यक् सम्पादन करने का निश्चय किया गया था। तदनुसार श्री श्रमणसागर और मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' इस कार्य को सम्पन्न करने में लगे, जिस के परिणाम स्वरूप अनेक ग्रन्थ उन की सम्पादकता में जनता के सामने आये।

आदि जैन साहित्य की प्रमुख कवियित्रियां हैं, जिन्हों ने प्राकृत, संस्कृत आदि में अपनी लेखनी चलाई है।

धर्म-कर्म और व्रतानुष्ठान में नारी कभी पीछे नहीं रही। अनेक शिलालेखों में जैन नारियों द्वारा बनाये जाने वाले अनेक गगन चुम्बी मंदिरों के निर्माण और उन की पूजादि के लिए दिये गये दान का उल्लेख मिलता है। जैन संप्रदाय में हमेशा से समय २ पर धार्मिक उत्सव होते आये हैं। जैन गृहस्थ अपने पूरे परिवार के साथ इन उत्सवों में शामिल होते थे। रानियां, सेठानियां और उन की कन्याएं सब के सामने साधुओं से प्रश्न पूछतीं और व्रतादि ग्रहण करती थीं।

तेरा पंथ संघ में अतीत की वह गौरव पूर्ण झांकी आज भी देखी जा सकती है। तेरा पंथ में प्रथम आचार्य भिक्षुगणी से लगा कर आज तक साध्वियों की संख्या सदैव साधुओं से अधिक रही है और आज भी साध्वियों की संख्या साधुओं से तीन गुने से भी अधिक है [1] इन साध्वियों में अनेक बड़ी योग्य, विदुषी और कर्तव्य परायणा हुई हैं और हैं। इन में सर्व प्रथम चूरू की सुपुत्री साध्वी प्रमुखा सरदारांजी की गणना की जाएगी जो संघ में आज भी महासती के नाम से समादृत हैं। संघ के इतिहास में इन का नाम चिर स्मरणीय रहेगा।

इन के बाद साध्वी जेठांजी, झमकूजी, गुलाबांजी (पञ्चम आचार्य मघवा गणी की भगिनी), कान्हकुँवरिजी, छोगांजी (अष्टमाचार्य कालूगणि की मातु श्री), अणचांजी आदि ने अपने उज्जवल कृतित्व से संघ के गौरव को बढ़ाया है। कठोरतम तपस्या व्रत साधन मे साध्वियों ने अत्यंत धैर्य का परिचय दिया है। महासती मुखांजी ने २७७ दिनों तक केवल आछ (छाछ को उष्ण करने के कुछ समय पश्चात् उस पर निथर आने वाला पानी) के सहारे कठोरतम साधना कर एक उज्जवल कीर्तिमान की स्थापना की थी। लेखन और भाषण कला में भी अनेक साध्वियों ने अत्यंत पटुता प्राप्त की है और वे हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी धाराप्रवाह व्याख्यान दे सकती हैं। उदाहरण के लिए साध्वी श्री राजमतिजी (रतनगढ़) का नाम प्रस्तुत किया जा सकता है।

---

१. भिक्षुगणी के निर्वाण के समय संघ में २१ साधु और २७ साध्वियां और तुलसीगणी के शासन काल में माघ सुदि ७ संवत् २०२२ को १६१ साधु और ५०० साध्वियां थीं।

चूरू जिला तेरापंथ के आचार्यों और साधु-साध्वियों का प्रमुख विचरण-स्थल रहा है। वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी के सं० २०२३ तक ३० चातुर्मास और इतने ही मर्यादा महोत्सव हुए हैं, जिनमें से १४ चातुर्मास और १३ मर्यादा महोत्सव चूरू जिले में हुए। सन्तों और साध्वियों के चातुर्मास तो चूरू जिले में निरंतर होते ही रहते हैं। इस वर्ष (वि.सं. २०२६) भी चूरू के प्रायः सभी कसबों में चातुर्मास हैं। चूरू नगर में तो मुनि श्री सुमेरमलजी (सुजानगढ) और साध्वी श्री कमलू जी (नोहर) के सान्निध्य में दोहरे चातुर्मास हो रहे हैं।

तेरापंथ के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों का श्रीगणेश चूरू जिले से ही हुआ है, जैसे संघ में चरम महोत्सव का सूत्रपात सं० १६१४ में चूरू जिले के बीदासर कसबे से हुआ। अणुव्रत आंदोलन का सूत्रपात और प्रवर्त्तन भी चूरू जिले से हुआ और चूरू जिले के एक संत श्री नगराजजी (सरदारशहर) ही इस आंदोलन के परामर्शक बने। संघ में डाक्टर ऑफ लेटर्स की सम्मानित उपाधि प्राप्त करने वाले आप ही प्रथम संत हैं। आपकी साहित्यिक प्रतिभा व लोक कल्याण कारी प्रवृत्तियों से आकर्षित होकर कानपुर विश्वविद्यालय ने डी॰लिट्० की सम्मानित उपाधि आपको प्रदान की है। अभी अभी "आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन" नाम से आपका एक बृहत् और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। ता० ३० जनवरी १६६८ को राजस्थान विधान सभा में अणुव्रत प्रस्ताव पारित हुआ,जिसका श्रेय भी मुनि श्री नगराजजी व श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' (राजलदेसर) को है।

संघ में संस्कृत का विशेष प्रचार भी यहीं से हुआ और समस्या पूर्ति तथा आशुकविता जैसी अनेक विधायें भी यहीं से प्रारम्भ हुई। संघ के प्रथम आशु-कवि मुनि श्री बुद्धमलजी भी इसी जिले के हैं। संघ में अवधान विद्या का प्रारम्भ भी चूरू जिले से हुआ। अवधान विद्या स्मरण शक्ति और मन की एकाग्रता का चमत्कारिक रूप है। शतावधानी मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', चूरू जिले के ही यशस्वी सन्त हैं, जिन्होंने अवधान विद्या को भारत में ही नहीं, बाहर भी प्रसिद्ध कर दिया। राष्ट्रपति भवन में किये गये आपके अव-धान प्रयोग ने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन, प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू और गृहमंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पंत को भी प्रभावित किया। उपरोक्त सन्तों के अतिरिक्त चूरू जिले के अन्य अनेक प्रभा-वक सन्त हैं, लेकिन उन सबका उल्लेख किसी स्वतंत्र कृति में ही सम्भव हो सकेगा, उदाहरण के लिए मुनि श्री छत्रमलजी (चूरू), श्री रूपचन्दजी(सरदार-

शहर), श्री डूंगरमलजी व श्री मोहनलालजी 'शार्दूल' के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

वि सं. १९९९ में चूरू में एक साथ २८ दीक्षाएं हुई थीं, जिनमें सर्व प्रथम १४ साधु और १४ ही साध्वियां थीं। सं० २००३ के माघ महोत्सव में चूरू में संघ के १८९ साधुओं में से १८३ साधु महोत्सव में सम्मिलित हुए जो तब तक होने वाले सम्मेलनों में सर्वाधिक थे। अस्पृश्यता निवारण के दृष्टिकोण से जब आचार्य तुलसीगणी ने तथाकथित अस्पृश्य व्यक्तियों को अपने सम्पर्क में लेना शुरू किया तो इस कार्य का प्रारम्भ भी चूरू जिले के छापर नामक क़सबे से ही हुआ। चूरू नगर में तो स्वयं आचार्य श्री ने हरिजन बस्ती में स्थित सर्वोदय-आश्रम में पधार कर प्रवचन किया।

चूरू जिले ने तेरापंथ संघ को दो उत्कृष्ट आचार्य और बहुत बड़ी संख्या में साधु और साध्वियां दी हैं, जिन्होंने अपने उज्ज्वल कार्यों से संघ की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाये हैं। वि. सं. २०२३ माघ सुदि ७ तक तेरापंथ संघ में १६१ साधु और ५०० साध्वियां थीं, जिन में से ७८ साधु और २९१ साध्वियां अकेले चूरू जिले की थीं। ऐसी स्थिति में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि तेरापंथ की भंत सम्पदा में सर्वाधिक योग चूरू जिले का है। चूरू जिले में चूरू नगर के अतिरिक्त छापर, राजलदेसर, बीदासर, सुजानगढ़, सरदारशहर, डूंगरगढ़, मोमासर, चाड़वास, पड़िहारा, रतनगढ़, रतननगर, राजगढ़, सादूलपुर और तारानगर आदि पंथ की गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

चूरू जिले के श्रावकों ने भी जैनधर्म के प्रचार व प्रसार में भरपूर योग दिया है। जिले में अनेक संपन्न और श्रद्धाशील श्रावक रहे हैं और आज भी हैं। उदाहरण के लिए चूरू के सर्व श्री केशरीचन्दजी व तोलारामजी कोठारी, रायचन्दजी, ऋद्धिकरणजी और हनूतमलजी सुराना, बीदासर के शोभाचन्दजी हनूतमलजी बेगानी, सरदारशहर के श्रीचन्दजी, गणेशदासजी वृद्धिचंद जी, नेमचंदजी व सम्पतकुमारजी गधैया और श्री जयचंदलालजी दफ्तरी, राजगढ़ के रामकुमारजी, पन्नालालजी सरावगी, डाबड़ी के श्री प्रभुदयालजी और सुजानगढ़ क रूपचंदजी सेठिया, गणेशमलजी मालू व मोहनलालजी कठोतिया के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पंथ का श्राविका समाज भी श्रावक समाज से किसी प्रकार पीछे नहीं है। [illegible] चाहिए कि पुरुष वर्ग की अपेक्षा नारी वर्ग में अपने धर्म और कर्तव्य के [illegible] क निष्ठा व आस्था पाई जाती है। श्रावक वर्ग से श्राविका वर्ग की [illegible] अधिक है और यही वर्ग संघ के लिए उत्तम श्रावक तैयार करता है। [illegible] प्रकार संक्षेप में निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि तेरापंथ को चूरू [illegible] बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण देन है।

भूत पूर्व बीकानेर राज्य में सन् १९३१ की जन गणना के अनुसार कुल २८,७७३ जैन (पुरुष १२५७९ और स्त्री १६१९४) निम्न रूप में थे—

अग्रवाल	२९०	जाट	५	ब्राह्मण	१
ओसवाल	२७,२७०	जती	८३	माहेश्वरी	३
कायस्थ	१	दरोगा	४	राजपूत	२
कुम्हार	१	नाई	१	सरावगी	८४०
माली	१	नीलगर	७	साधु	१५९
गूजर	१	पटवा	३	सुनार	१
				कुल -	२८,७७३

यह संख्या जैन धर्म के विभिन्न पंथों में निम्न रूप में बंटी हुई थी—

श्वेताम्बरी	दिगम्बरी	बाईस टोला	तेरा पंथी	अन्य	कुल
३,५५८	१,००१	३,६६४	२०,५४९	१	२८,७७३

इन २८,७७३ जैन मतावलम्बियों में से आधे से अधिक अर्थात् १६,६४४ (पुरुष ७,१४१ और स्त्री ९,५०३) वर्तमान चूरू जिले की ७ तहसीलों में निम्न रूप में थे—

तहसील	श्वेताम्बरी	दिगम्बरी	बाईस टोला	तेरापंथी	कुल
सुजानगढ़	४७	५७८	१८	४,१०९	४,७५२
सरदारशहर	६४	—	८३	३,८१५	३,९९२
रतनगढ़	५	१२	—	२,३७५	२,३९२
डूंगरगढ़	२	—	४	२,१५९	२,१६५
राजगढ़	१२	५६	३१	१,१०७	१,२०६
चूरू	२	१४२	५५	१,४३४	१.६३३,
रेणी	८२	४	—	४१८	५
कुल	२४४	७९२	१९१	१५,४१७	१६,६४४

यहाँ यह स्मरणीय है कि उस वक्त बीकानेर राज्य में कुल ८४८ सरावगी थे, जिनमें से ८ हिन्दू धर्मावलम्बी और शेष ८४० जैन धर्मावलम्बी थे। ओसवालों की संख्या २७,५६८ थी जिन में से २७,२७० जैन धर्मावलम्बी थे।

शहर), श्री डूंगरमलजी व श्री मोहनलालजी 'शार्दूल' के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

वि सं. १९९९ में चूरू में एक साथ २८ दीक्षाएं हुई थीं, जिनमें सर्व प्रथम १४ साधु और १४ ही साध्वियां थीं। सं० २००३ के माघ महोत्सव में चूरू में संघ के १८९ साधुओं में से १८३ साधु महोत्सव में सम्मिलित हुए जो तब तक होने वाले सम्मेलनों में सर्वाधिक थे। अस्पृश्यता निवारण के दृष्टिकोण से जब आचार्य तुलसीगणी ने तथाकथित अस्पृश्य व्यक्तियों को अपने सम्पर्क में लेना शुरू किया तो इस कार्य का प्रारम्भ भी चूरू जिले के छापर नामक क़सबे से ही हुआ। चूरू नगर में तो स्वयं आचार्य श्री ने हरिजन बस्ती में स्थित सर्वोदय-आश्रम में पधार कर प्रवचन किया।

चूरू जिले ने तेरापंथ संघ को दो उत्कृष्ट आचार्य और बहुत बड़ी संख्या में साधु और साध्वियां दी हैं, जिन्होंने अपने उज्ज्वल कार्यों से संघ की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाये हैं। वि. सं. २०२३ माघ सुदि ७ तक तेरापंथ संघ में १६१ साधु और ५०० साध्वियां थीं, जिन में से ७८ साधु और २९१ साध्विय[illegible] अकेले चूरू जिले की थीं। ऐसी स्थिति में यह नि:संकोच कहा जा सकता [illegible] कि तेरापंथ की संत सम्पदा में सर्वाधिक योग चूरू जिले का है। चूरू जिले [illegible] चूरू नगर के अतिरिक्त छापर, राजलदेसर, बीदासर, सुजानगढ़, सरद[illegible] शहर, डूंगरगढ़, मोमासर, चाड़वास, पड़िहारा, रतनगढ़, रतननगर, राज[illegible] सादूलपुर और तारानगर आदि पंथ की गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र रहे हैं[illegible]

चूरू जिले के श्रावकों ने भी जैनधर्म के प्रचार व प्रसार में भरपूर [illegible] दिया है। जिले में अनेक संपन्न और श्रद्धाशील श्रावक रहे हैं और आ[illegible] हैं। उदाहरण के लिए चूरू के सर्व श्री केशरीचन्दजी व तोलारामजी [illegible] रायचन्दजी, ऋद्धिकरणजी और हनूतमलजी सुराना, बीदासर के शोभा[illegible] हनूतमलजी बेंगानी, सरदारशहर के श्रीचन्दजी, गणेशदासजी वृद्धि[illegible] नेमचँदजी व सम्पतकुमारजी गधैया और श्री जयचंदलालजी दफ्तरी, [illegible] के रामकुमारजी, पन्नालालजी सरावगी, डाबड़ी के श्री प्रभुदयाल [illegible] सुजानगढ़ क रूपचंदजी सेठिया, गणेशमलजी मालू व मोहनलालजी [illegible] के नाम प्रस्तुत किये [illegible] सी प्रकार पं[illegible]

पंथ क[illegible]

कहन[illegible]

परिशिष्ट–२

तेरापंथ के उद्भव सं० १८१७ के सं० २०२३ वि० माघ सुदि ७ तक इस पंथ में कुल २०४३ दीक्षाएं निम्न रूप में हुईं—

जाति—	साधु—	साध्वी—
ओसवाल	६०१	१२६८
अग्रवाल	४६	२६
पोरवाल	२८	५१
सरावगी	६	७
माहेश्वरी	३	४
सुनार	१	१
कुम्हार	०	१
कुल	६८५	१३५८ =२०४३

माघ सुदी ७ सं० २०२३ वि० को तेरापंथ संघ में १६१ साधु और ५०० साध्वियां थीं—

जाति—	साधु—	साध्वी—
ओसवाल	१५७	४७६
अग्रवाल	२	१५
पोरवाल	२	९
कुल	१६१	५०० = ६६१

उपरोक्त ६६१ साधु साध्वियों में से ३६९ (७८साधु और २९१ साध्वियां) जिले के थे। आंकड़ों के हिसाब से निकाला जाए तो कहना होगा कि पंथ की लगभग ५६ प्रतिशत संत संपदा चूरू जिले की है।

परिशिष्ट—३

आधार सामग्री

अग्रवाल जाति का इतिहास, दूसरा भाग।
अणुव्रत पत्रिका।
इम्पीरियल गेजेटियर ऑव इंडिया।
ओसवाल जाति का इतिहास।
कैटेलॉग एण्ड गाइड गंगा गोल्डन म्यूजियम, बीकानेर।
जैन भारती विवरण पत्रिका, वर्ष १६, अंक ८-९।
तेरापंथ का इतिहास (खण्ड-१), मुनि श्री बुद्धमलजी।
बावाबाड़ी दिग्दर्शन— सं० पं० मदनलाल जोशी।
दादा श्री जिनकुशल सूरि—श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा।
देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान— श्री बालचन्द मोदी।
पाणिनि कालीन भारतवर्ष— श्री वासुदेव शरण अग्रवाल।
बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रंथ—
बीकानेर जैन लेख संग्रह— श्री अगरचन्द, भंवरलाल नाहटा।
बीकानेर राज्य का इतिहास— डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।
मरु-भारती (शोध पत्रिका), सम्पादक डा० कन्हैयालाल सहल।
युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि— श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा।
राजस्थान पुरातन ग्रंथ माला, हस्त लिखित ग्रंथों की सूची भाग १।
राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा— श्री अगरचन्द नाहटा।
राजस्थानी हस्त लिखित ग्रंथ सूची भाग १-२
सेन्सस ऑव इंडिया-१९३१, जिल्द १, बीकानेर स्टेट, भाग २।
श्री गुरु गुण रत्नावली— उ० प्राणाचार्य आदि
श्री जिनऋद्धिसूरि जीवनप्रभा (गुजराती), श्री गुलाब मुनि।
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय नामावली– श्री छिलमीचन्द डूंगरवाल।
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्रार्थ मोटर यात्रा दर्पण।
श्री दिगम्बर जैन मंदिर पूगल, खरतरगच्छ व लोंकागच्छ के उपाश्रय,पुराना पुस्त०
नगर श्री संग्रहालय चूरू, आदि से प्राप्त सामग्री. रुक्के, परवाने, गुटके,
हस्तलिखित ग्रंथ, पत्र, मन्दिरों दादाबाड़ियों के लेख, परिचय पत्र आदि।
श्री अगरचन्दजी नाहटा के कतिपय पत्र। लेख में मुद्रित श्री जिनसुखसूरिजी
व जिन भक्ति सूरिजी के ब्लाक भी श्री अगरचन्दजी नाहटा के सौजन्य
प्राप्त हुए। शेष सारे ब्लाक नगर-श्री संग्रहालय की संपत्ति हैं।

चूरू जिले के अमरसर गांव से प्राप्त ११वीं शती की कलापूर्ण मूर्ति का रेखाचित्र

बीकानेर संग्रहालय के सौजन्य से प्राप्त

नगरश्री का गौरव

न
ग
र
श्री
का
गौ
र
व

पू
र्ण
प्र
का
श
न

F.10/62—EM
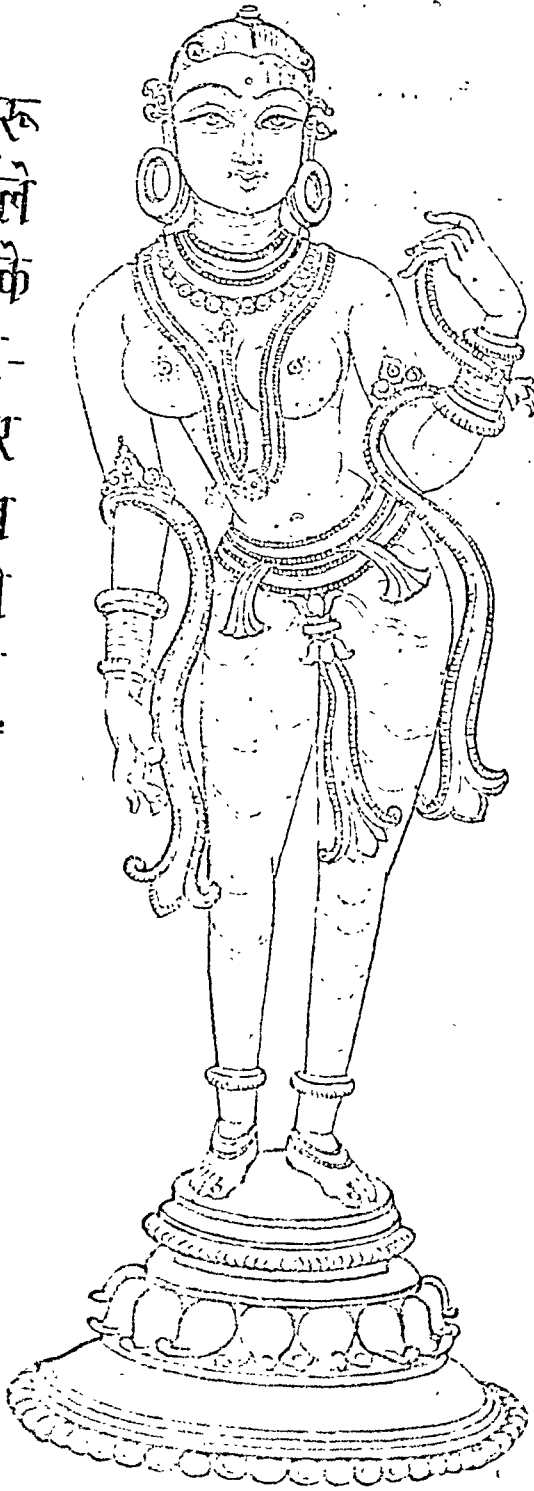
शिक्षा मंत्री, भारत
EDUCATION MINISTER
INDIA

नई दिल्ली, २३ जनवरी, १९६६.

प्रिय श्री अग्रवाल,

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि राजस्थान के निर्भीक सपूत स्वामी गोपालदासजी का जीवन चरित्र 'नगर-श्री', चूरू द्वारा प्रकाशित किया गया है। निस्संदेह स्वामी गोपालदासजी भारत माता के उन महान सपूतों में से एक थे जिन्होंने अपने जीवन की आहुति देकर भारत माता को बन्धन मुक्त करने के लिये आगे कदम बढ़ाया। 'नगर-श्री' का यह प्रयास सर्वथा सराहनीय है और मैं आशा करता हूं कि आज की परिस्थितियों में देश के निर्माण में लगे हुए सभी देशभक्तों को इससे पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित,

आपका
त्रिगुण सेन
(त्रिगुण सेन)

श्री सुबोधकुमार अग्रवाल,
सचिव, 'नगर-श्री',
चूरू (राजस्थान)

अपनी प्रति शीघ्र सुरक्षित करवा लीजिये :—२-८-६०

लोक संस्कृति शोध संस्थान

नगर-श्री, चूरू

द्वारा

प्रकाश्य

चूरू जिले का राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रामाणिक सचित्र इतिहास

एक सम्मति—

इसे तैयार करने में यथासाध्य सारी प्रकाशित तथा ज्ञात आधार-सामग्री का उपयोग किया गया है। यही नहीं विगत इतिहास की अधिकाधिक प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से इस क्षेत्र के प्राचीन टीलों और यत्र-तत्र प्राप्त शिला लेखों की देखभाल कर उपयोगी आधार सामग्री को एकत्र किया गया है। अब तक प्राप्त जानकारी को यों सुव्यवस्थित क्रमानुक्रम से प्रस्तुत कर भावी संशोधकों का महत्त्वपूर्ण मार्ग निर्देशन किया है। यही नहीं इस क्षेत्र के भावी योजना बद्ध विकास का कार्य क्रम बनाने में भी यह ग्रंथ उपयोगी होगा। इस प्रकार इस इतिहास ग्रंथ को तैयार करवाकर नगर-श्री, चूरू ने अन्य क्षेत्रों के लिये अनुकरणीय आदर्श और ध्येय प्रस्तुत किया है।

— डॉ० रघुवीरसिंह एम० ए०,
डी० लिट्०